गोरखनाथ कृषि दर्पण

(अर्धवार्षिक)

महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र

चौकमाफी, पीपीगंज, गोरखपुर, - 273165 (उ०प्र०)

संस्करण– द्वितीय, अंक 1 (जनवरी - जून 2022)

गोरखनाथ कृषि दर्पण

(अर्धवार्षिक)

संस्थापक एवं संरक्षक

पूज्यनीय गोरक्षपीठाधीश्वर श्री योगी आदित्यनाथ जी महाराज

प्रो. यू. पी. सिंह
उपाध्यक्ष
महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र

योगी कमलनाथ जी
सचिव
महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र

सम्पादक मण्डल

प्रधान संपादक

विवेक प्रताप सिंह
(वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष)

संपादक

राहुल कुमार सिंह
(विषय वस्तु विशेषज्ञ—कृषि प्रसार)

अवनीश कुमार सिंह
(विषय वस्तु विशेषज्ञ—सस्य प्रसार)

अजीत कुमार श्रीवास्तव
(विषय वस्तु विशेषज्ञ—उद्यान)

संदीप प्रकाश उपाध्याय
(विषय वस्तु विशेषज्ञ—मृदा विज्ञान)

संकलन एवं सहयोग

गौरव कुमार सिंह
(कार्यक्रम सहायक —कंप्यूटर)

विषय -सूची

क्रम संख्या	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	**कैसे करें गेंदा फूल की खेती** अनुपम सिंह एवं डॉ मोहम्मद अबु नैय्यर	8-10
2.	**ग्रीष्मकालीन ऋतु में पशुओं का वैज्ञानिक विधि से प्रबंधन** पंकज कुमार गुप्ता एवं नदीम खान	11-14
3.	**ज्वार: खरीफ चारे की उत्तम फसल** दीपक कुमार	15-18
4.	**केंचुआ खाद: मृदा स्वास्थ्य के लिए वरदान** डॉ० संदीप प्रकाश उपाध्याय, डॉ० विवेक प्रताप सिंह, डॉ० राहुल कुमार सिंह, श्री अवनीश कुमार सिंह, डॉ० अजीत कुमार श्रीवास्तव, श्रीमती श्वेता सिंह तथा यश कुमार सिंह	19-20
5.	**ड्रोन तकनीक का कृषि में प्रयोग** डा. एल. सी. वर्मा, डा. वी. के. सिंह, डा. अंगद प्रसाद, डा. अजीत वत्स	21-26
6.	**दुधारू पशुओं का पोषण प्रबन्ध** डा. एल. सी. वर्मा, डा. वी. के. सिंह, अंगद प्रसाद एवं डा. फूल कुमारी	27-31
7.	**दुधारू पशुओं में पोषण का महत्व** डा. एल. सी. वर्मा	32-37
8.	**पशुओं पर गर्मी के मौसम का प्रभाव** श्री कान्त	38
9.	**प्राकृतिक खेती - आधुनिक कृषि का एक गेम चेंजर** यश कुमार सिंह, प्रज्ञा श्रीवास्तव, अभिनव सिंह	39-42

10. **हरी खाद: मृदा स्वास्थ्य एवं टिकाऊ खेती के लिए वरदान** 43-47
श्री अवनीश कुमार सिंह, डॉ० संदीप प्रकाश उपाध्याय, डॉ० विवेक प्रताप सिंह, डॉ० राहुल कुमार सिंह, डॉ० अजीत कुमार श्रीवास्तव, श्रीमती श्वेता सिंह तथा यश कुमार सिंह

11. **प्याज वर्गीय फसल लीक: मुनाफे की खेती** 48-50
डॉ. अजीत कुमार श्रीवास्तव, श्री अवनीश कुमार सिंह, डॉ० संदीप प्रकाश उपाध्याय, डॉ० विवेक प्रताप सिंह, डॉ० राहुल कुमार सिंह, श्रीमती श्वेता सिंह तथा यश कुमार सिंह

12. **बैकयार्ड मुर्गी पालन: आय और रोजगार का अतिरिक्त साधन** 51-55
डॉ. विवेक प्रताप सिंह, श्री अवनीश कुमार सिंह, डॉ० संदीप प्रकाश उपाध्याय, डॉ० राहुल कुमार सिंह, डॉ० अजीत कुमार श्रीवास्तव श्रीमती श्वेता सिंह तथा यश कुमार सिंह

13. **प्राकृतिक खेती - उत्पादन की कम लागत द्वारा किसानों की शुद्ध आय बढ़ाने में सहायक** 56-60
एन.एम.सिंह, राजु आर., अलका सिंह, ओम प्रकाश सिंह एवं कुन्दन कुमार

14. **मूंग की उन्नत खेती** 61-64
संजीत कुमार

15. **मृदा का स्वास्थय कैंसे जाँचे और इसे कैसे बनाये रखे** 65-66
दीपक कुमार एवं आदेष सिंह'

16. **शहद का घरेलू स्तर पर परीक्षण कैसे करें** 67-68
सौरभ माहेश्वरी' और डॉ शकुंतला गुप्ता

17. **सूकर पालन एक लाभकारी उद्यम** 69-70
डॉ० उमेश कुमार शुक्ल

18. **सब्जियों में समेकित कीट प्रबन्धन** 71-74
डॉ. राहुल कुमार सिंह, डॉ. वी.पी. सिंह, ए.के. सिंह, डॉ. एस.पी. उपाध्याय, डॉ. ए.के., श्रीवास्तव, डॉ. श्वेता सिंह एवं यश कुमार सिंह

19. **बकरियों के प्रमुख रोग एवं उनकी रोकथाम** 75-78
डॉ. विवेक प्रताप सिंह, श्री अवनीश कुमार सिंह, डॉ० संदीप प्रकाश उपाध्याय, डॉ० राहुल कुमार सिंह, डॉ० अजीत कुमार श्रीवास्तव, श्रीमती श्वेता सिंह तथा यश कुमार सिंह

20. **मोटे अनाज सेहत का राज** 79-83
श्रीमती श्वेता सिंह, श्री अवनीश कुमार सिंह, डॉ० संदीप प्रकाश उपाध्याय, डॉ० विवेक प्रताप सिंह, डॉ० राहुल कुमार सिंह, डॉ० अजीत कुमार श्रीवास्तव तथा यश कुमार सिंह

21. **अदरक की उन्नतशील खेती** 84-86
डॉ.अजीत कुमार श्रीवास्तव, श्री अवनीश कुमार सिंह, डॉ० संदीप प्रकाश उपाध्याय, डॉ० विवेक प्रताप सिंह, डॉ० राहुल कुमार सिंह, श्रीमती श्वेता सिंह तथा यश कुमार सिंह

22. **छत पर उगाएं सेहतमंद सब्जियां** 87-89
ओमकार देवगडे

23. **जीरो बजट प्राकृतिक खेती** 90-92
डॉ. अमित कुमार केशरी और डॉ. आशीष कुमार श्रीवास्तव

24. **सूअर पालन – एक लाभदायक व्यवसाय** 93-95
डॉ. अमित कुमार केशरी

25. **वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जैविक खेती का महत्व एवं तरल जैविक खादों की उपयोगिता** 96-102
विवेक पाण्डेय, आदेश सिंह, संजीव सिंह, नीरज कुमार एवं महावीर सिंह

26. **किसानों के लिए बैकयार्ड बकरी पालन : एक लाभकारी व्यवसाय** 103-105
अभिनव सिंह, डॉ० आर० के० दोहरे, ऋषि कुमार सिंह एवं यश कुमार सिंह

परिचय

कृषि विज्ञान केन्द्र की स्थापना कृषि एवं सम्बन्धित विषयों की नवीनतम तकनीकों के हस्तान्तरण एवं प्रसार द्वारा जनपद के सर्वांगीण विकास हेतु गोरखनाथ सेवा संस्थान के नियंत्रण में गोरक्षपीठाधीश्वर पूज्यनीय महंत श्री योगी आदित्यनाथ जी द्वारा की गई।

इस केन्द्र का शिलान्यास 23 अक्टूबर 2016 को माननीय केन्द्रीय कृषि मंत्री, कृषि एवं किसान मंत्रालय, भारत सरकार श्री राधा मोहन सिंह जी द्वारा किया गया। यह केन्द्र भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-कृषि प्रौद्योगिक अनुसंधान संस्थान द्वारा वित्त पोषित है। यह केन्द्र गोरखनाथ की पवित्र धरती पर स्थापित होने ई वजह से इस केन्द्र का पूरा नाम महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र रखा गया। यह केन्द्र गोरखपुर जनपद से 35 कि०मी० दूरी पर पीपीगंज रेलवे स्टेशन से 08 कि०मी० दूरी पर स्थित है। पीपीगंज गोरखपुर-सोनौली मार्ग पर स्थित है।

महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र जनपद की कृषि सम्बन्धी आवश्यकतो की पूर्ति हेतु कृषकों की सेवा में तत्पर रहेगा। केन्द्र के समस्त तकनीकी हस्तान्तरण कार्यक्रम "करके सीखों" एवं देखकर विश्वास करो के सिद्धान्त पर संचालित किया जा रहा है तथा प्रौद्योगिकी में निहित वास्तविक दक्षता को सिखाने पर बल दिया जाता है।

यह केन्द्र एक ऐसी वैज्ञानिक संस्था के रूप में किसानों के बीच ऊभर आयेगी जहाँ किसानों एवं कृषि कार्य में संलग्न महिलाओं एवं ग्रामीण युवकों/युवतियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाना शुरू हो चूका है। प्रशिक्षण मुख्यतः फसलोत्पादन, पौध सुरक्षा, गृह विज्ञान, पशुपालन, उद्यानिकी, कृषि अभियान्त्रिकी, तथा अनेक कृषि सम्बंधित विषयों में दिया जाता है। संस्था द्वारा किसानों के ही खेतों पर किसानों को शामिल करते हुए वैज्ञानिकों की देख-रेख में उन्नत तकनीकी का परिक्षण किया जाता है तथा कृषकों एवं विस्तार कार्यकर्ताओं के समक्ष आधुनिकतम वैज्ञानिक तकनीक का अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन किया जाता है। कृषि विज्ञान केन्द्र वैज्ञानिकों,

विषय वस्तु विशेषज्ञों , विस्तार कार्यकर्ताओं तथा कृषकों की संयुक्त सहभागिता से कार्य करता है । इस केन्द्र में प्रशासनिक भवन, प्रशिक्षण हॉल, पुस्तकालय, फसलों, सब्जियों एवं चारा की उन्नतशील तकनीकी का प्रदर्शन तकनीकी पार्क में किया गया है । इसके अतिरिक्त किसानों हेतु वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन, मौनपालन, मशरुम उत्पादन पशु चॉकलेट व पोषक वाटिका प्रदर्शन इकाई स्थापित है ।

कैसे करें गेंदा फूल की खेती

अनुपम सिंह, पीएचडी स्कॉलर, (हॉर्टिकल्चर), कृषि विज्ञान विभाग, डॉ मोहम्मद अबु नैय्यर, सहायक प्राध्यापक,

[1&2]कृषि विज्ञान विभाग, इंटीग्रल विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

भारत में गेंदा एक बहुत ही महत्वपूर्ण फूल माना जाता है। देश में इसका प्रयोग मंन्दिरों में, शादी-विवाह में व अन्य कई अवसरों पर किया जाता है। गेंदे के फूल के अर्क का प्रयोग जलने, कटने, और त्वचा में जलन से बचाव के लिए किया जाता है। गेंदा के फूल में विटामिन सी भरपूर मात्रा में पाया जाता है जो कि एंटीऑक्सीडेंट है इसलिए गेंदा के फूल से बने अर्क का सेवन ह्रदय रोग, कैंसर तथा स्ट्रोक को रोकने में सहायक होता है। कुछ स्थानों पर गेंदे के फूल का तेल निकालकर उसका प्रयोग इत्र एवं अन्य खुशबूदार उत्पाद बनाने में भी किया जा रहा है। तेल के लिये विशेष रूप से छोटे फूल वाली किस्मों का प्रयोग किया जाता है। पूरे वर्ष गेंदा के पुष्पों की उपलब्धता होने के वाबजूद भी इसकी मांग बाजार में बनी रहती है। लम्बें समय तक फूल खिलने तथा आसानी से उगाये जाने के कारण गेंदा भारत के साथ-साथ पूरे विश्व में प्रचलित है। भारत में गेंदा को 66.13 हजार हैक्टेयर क्षेत्र में उगाया जा रहा है जिससे कि 603.18 हजार मिलियन टन उत्पादन प्राप्त होता है।

भूमि :- गेंदा की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है। लेकिन इसके अच्छे उत्पादन के लिये अच्छे जल निकास वाली दोमट भूमि अच्छी मानी जाती है। जिसका पी.एच.मान 7-7.5 होना चाहिए।

जलवायु :- गेंदा के अच्छे उत्पादन के लिये शीतोष्ण और समशीतोष्ण जलवायु अच्छी मानी जाती है। अधिक गर्मी एवं अधिक सर्दी पौधों के लिए अच्छी नहीं मानी जाती है। इसके उत्पादन के लिये तापमान 15-30 डिग्री सेल्सियस होना चाहिए।

नर्सरी के लिए भूमि तैयार करना :- नर्सरी के लिये ऊँचे स्थान का चयन करना चाहिए। जिसमें समुचित जलनिकास हो, और नर्सरी का स्थान छाया रहित होना चाहिए। जिस जगह पर नर्सरी लगानी हो वहां की मिट्टी को समतल किया जाता है उसके बाद 7 मीटर लम्बी, 1 मीटर चौड़ी और 15-20 सेमी. ऊंची क्यारियों को आवश्यकतानुसार बना लिया जाता है और फिर बीज की बुवाई की जाती है।

प्रजातियाँ :- गेंदे की प्रजाति दो प्रकार की होती है।

1.फ्रेंच प्रजाति :- बोलेरो, रेडहेड, गोल्डमजैम, बटर, डस्टीलाल, फ्लेमिंगफायर, फ्लेम, ऑरेंजफ्लेम, सनक्रिस्ट आदि प्रमुख हैं।

2.अफ्रीकन प्रजाति :- पूसानारंगी गेंदा, पूसाबसंती गेंदा, गोल्डनकॉयन, स्टारगोल्ड, गोल्डन एज, डयूस स्पन गोल्ड, हैप्पीनेस, स्पेस एज, मूनशॉटस्माइल आदि प्रमुख हैं।

पौध तैयार करने का समय :- पूरे वर्ष गेंदा का उत्पादन प्राप्त करने के लिये पौध को निम्न समय पर तैयार करना चाहिए।

1.**ग्रीष्म ऋतु :-** मई-जून में फूल प्राप्त करने के लिये बीज को फरवरी-माह में नर्सरी में बोना चाहिए।

2.शरद ऋतु :- नवम्बर-दिसम्बर में फूल प्राप्त करने के लिये बीज को अगस्त माह में नर्सरी में बोना चाहिए।

3.बसंत ऋतु :- अगस्त-सितम्बर में फूल प्राप्त करने के लिये बीज को मई माह में नर्सरी में बोना चाहिए।

बीज की मात्रा :- एक हैक्टेयर क्षेत्र की पौध तैयार करने के लिये 800 ग्राम से 1 किलो ग्राम बीज की आवश्यकता होती है।

पौध की रोपाई :- जब पौध लगभग 30-35 दिन की या 4-5 पत्तियों की हो जाये तब उसकी रोपाई कर देनी चाहिए। पौधों की रोपाई हमेशा शाम के समय करनी चाहिए। रोपाई के बाद पौधों के चारों ओर से मिट्टी को हाथ से दबा देना चाहिए। रोपाई के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करना चाहिए।

रोपाई की दूरी :-रोपाई की दूरी प्रजाति के ऊपर निर्भर करती है। सामान्यतः गेंदा के पौधे से पौधे की दूरी 30-35 से.मी. मीटर और लाइन से लाइन की दूरी 45 से.मी. मीटर रखते हैं।

खाद एवं उर्वरक :- गेंदा का अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिये खेत की जुताई से 10 से 15 दिन पहले 150 से 200 कुन्तल अच्छी सड़ी गोबर की खाद को खेत में डाल देना चाहिए और 160 किलोग्राम नाइट्रोजन, 80 किलोग्राम फॉस्फोरस, 80 किलोग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन की आधी तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा रोपाई के पहले आखिरी जुताई के समय भूमि में मिला देनी चाहिए शेष बची नाइट्रोजन की मात्रा लगभग एक महिने के बाद खड़ी फसल में छिड़काव कर दी जाती है।

सिंचाई :- खेत में नमी को ध्यान में रखते हुये सिंचाई करनी चाहिए। गर्मी के दिनों में 6-7 दिन के अंतराल में तथा सर्दियों में 10-15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण :- गेंदा की फसल को खरपतवार से मुक्त रखने के लिये समय-समय पर हैंड हो और खुरपी की सहायता से खरपतवार नियंत्रण करना चाहिए।

शीर्षकर्तन :- गेंदा की फसल में यह बहुत महत्वपूर्ण कार्य होता है। जब गेंदे की फसल लगभग 45 दिन की हो जाए तो पौधे की शीर्ष कलिका को 2-3 से.मी. मीटर काटकर निकाल देना चाहिए जिससे कि पौधे में अधिक कलियों का विकास हो सके और इससे गेंदा की अधिक फूल प्राप्त होते हैं।

फूलों की तुड़ाई :- फूलों की तुड़ाई अच्छी तरह से खिलने के बाद करना चाहिए। फूल तोड़ने का सबसे अच्छा वक्त सुबह या शाम का होता है। फूलों को तोड़ने से पहले खेत में हल्की सिंचाई करनी चाहिए जिससे फूलों का ताज़ापन बना रहे। फूलों को तोड़ने के लिए अंगूठे एवं उंगली का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए, कि पौधों को क्षति न पहुंचे।

उपज :- अफ्रीकन गेंदा से 18-20 टन तथा फ्रेंच गेंदा से 10-12 टन प्रति हैक्टेयर उपज प्राप्त की जा सकती है।

प्रमुख रोग एवं कीट नियंत्रण :-

प्रमुख रोग :-

1.आर्द्र पतन :- यह रोग मुख्य रूप से नर्सरी में लगता है। इस रोग से प्रभावित नर्सरी में बीज का अंकुरण कम होता है और पौधे के तने गलने लगते हैं। अधिक गर्म तथा नमी युक्त भूमि में यह रोग तेजी से फैलता है।

नियंत्रण :-

1. इसके नियंत्रण के लिए बुवाई से पहले बीज को कैप्टान नामक दवा से 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

2.रोग ग्रस्त पौधों को नर्सरी से उखाड़ कर फेंक देना चाहिए।

3. **पाउड्री मिल्ड्यू :-** यह एक कवक जनित रोग है। इस रोग से ग्रस्त पौधे की पत्तियां सफेद रंग की दिखाई देती है और बाद में पत्तियों पर छोटे-छोटे धब्बे दिखाई देते हैं तथा बाद में पूरा पौधा सफेद पाउडर से ढ़क जाता है।

नियंत्रण :

1. इसके नियंत्रण के लिए सल्फेक्स नामक दवा को 3 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव किया जाता है।

2. रोग ग्रस्त पौधे को खेत से उखाड़ कर मिट्टी में दबा देना चाहिए।

प्रमुख कीट :-

1.**रेड स्पाइडरमाइट :-** यह गेंदा का बहुत ही हानिकारक कीट है। इस कीट का प्रकोप फूल आने के समय अधिक होता है। यह कीट गेंदा की पत्तियों एव तने के कोमल भाग से रस चूसता है।

नियंत्रण :-

1. इसके नियंत्रण के लिए 0.2 प्रतिशत मैलाथियान नामक दवा का घोल बनाकर छिड़काव करें।

2. **स्लग :**-यह कीट गेंदा की पत्तियों को खाकर नुकसान पहुंचाता है।

नियंत्रण :-

1. इसके नियंत्रण के लिये 15 प्रतिशत मे टेल्डीहाइड नामक कीटनाशी धूल का प्रयोग करना चाहिए।

ग्रीष्मकालीन ऋतु में पशुओं का वैज्ञानिक विधि से प्रबंधन

पंकज कुमार गुप्ता एवं नदीम खान

आई आई ए एस टी, इंटीग्रल यूनिवर्सिटी, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, 226026

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के कथनानुसार, उन्होने ये कहा था कि- "गाय बचेगी तो मनुष्य बचेगा, गाय नष्ट होगी तो उसके साथ हमारी सभ्यता और अहिंसा प्रधान संस्कृति भी नष्ट हो जाएगी और पीछे रह जाएँगे भूखे-नंगे हड्डी के ढाँचे वाले मनुष्य" भारत दुग्ध उत्पादन में पिछले दो दशक से भी ज्यादा समय से विश्व में प्रथम उत्तपादक राष्ट्र बना हुआ है, वर्ष 2019-20 के दौरान कुल दुग्ध उत्पादन 198.40 मि. टन एवं 406 ग्राम/प्रतिदिन/व्यक्ति दूध की उपलब्धता है । एक आंकड़ों के अनुसार दूध के उत्पादन का मूल्य गेहूं और धान (खाद्यान्न) के कुल उत्पादन मूल्य से अधिक है । भारत पिछले छह वर्षों के दौरान दुग्ध उत्पादन औसतन 6.3 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ा है जबकि विश्व दुग्ध उत्पादन 1.5 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ रहा है । भारत में विश्व के विभिन्न देशों की तुलना में सबसे ज्यादा दूध देने वाली पशुओं की संख्या है । लेकिन, उत्पादकता की दृष्टिकोण से विदेशों की तुलना में बहुत ही कम है फिर भी हमारे देश में दूध की पूर्ती इन्ही पशुओं से पूरी होती है और ये दुग्ध उत्पादन में भारत को प्रथम स्थान पर काबिज रखी है । पशुओं के आंकड़ो की बात की जाये तो नेशनल ब्यूरो ऑफ़ एनिमल जेनेटिक रिसोर्सेज, करनाल, हरियाणा' के अनुसार भारत में स्वदेशी गायों की 50 प्रजातियाँ है, तथा भैंस की कुल 17 प्रजातियाँ है । 'मत्स्य पालन, पशुपालन और डेयरी मंत्रालय के पशुपालन एवं डेयरी विभाग की 20वीं पशुधन गणना रिपोर्ट' (20th लाइवस्टॉक सेन्सस रिपोर्ट) के अनुसार, देश में कुल पशुधन आबादी 535.78 मिलियन है, जो पशुधन गणना-2012 (512.57 मिलियन) की तुलना में 4.6 प्रतिशत अधिक है । कुल गोजातीय पशुओं की संख्या (मवेशी, भैंस, मिथुन एवं याक) वर्ष 2019 में 302.79 मिलियन आंकी गई है, जो पिछली गणना की तुलना में लगभग 1 प्रतिशत अधिक है । इसके अलावा, देश में मवेशी (गायों) की कुल संख्या वर्ष 2019 में 192.49 मिलियन है, जो पिछली गणना की तुलना में 0.8 प्रतिशत ज्यादा है जिसमें मादा मवेशी (गायों की कुल संख्या) 145.12 मिलियन आंकी गई है जो पिछली गणना (2012, 19th लाइवस्टॉक सेन्सस) की तुलना में 18.0 प्रतिशत अधिक है जो कि देश में दूध उत्पादन के लिए एक अच्छा संकेत है । विदेशी/संकर नस्ल और स्वदेशी/अवर्गीय मवेशी की कुल संख्या देश में क्रमश: 50.42 मिलियन और 142.11 मिलियन है । इसी क्रम में, अगर बात करें स्वदेशी/अवर्गीय मादा मवेशी की कुल संख्या वर्ष 2019 में, तो पिछली गणना की तुलना में 10 प्रतिशत बढ़ गई है । विदेशी/संकर नस्ल वाली मवेशी की कुल संख्या वर्ष 2019 में पिछली गणना की तुलना में 26.9 प्रतिशत बढ़ गई है । पशुपालकों तथा गौशाला फार्म इंचार्ज को आवास व्यवस्था के साथ साथ सबसे महत्वपूर्ण भोजन व्यवस्था इसके अलावा साफ़ व स्वच्छ पानी उपलब्ध कराना, हरा चारा उपलब्ध कराना, लू लगने से बचाना इत्यादि अनिवार्य है । यदि कुछ कमी आयी भी तो अत्यधिक (असहनीय) गर्मी के कारण आएगी। ग्रीष्मकालीन ऋतु में जब पर्यावरण में दिन का तापमान 42–48 डिग्री सेल्सियस (˚C) तथा आर्द्रता 60 प्रतिशत से अत्यधिक हो जाता है तो पशुओं के पाचन प्रणाली के साथ साथ निर्जलीकरण का भी असर दिखने लगता है. जिसके कारण दुग्ध उत्पादन प्रभावित होने लगता है, जो पशुपालकों के लिए एक चिंता का विषय बन जाता है । गर्मी में दुधारू पशुओं पर यदि पर्याप्त ध्यान न दिया जाये तो पशु के चारा खाने की मात्रा में 10 से लेकर 30 प्रतिशत एवं दूध उत्पादन छमता में 10-25 प्रतिशत तक की कमी पायी जाती है । दूध वसा प्रतिशत पर प्रभाव पड़ता है । प्रजनन छमता में कमी होने के साथ साथ प्रतिरक्षा प्रणाली में

भी कमी आ सकती है। बीसवीं सदी के अन्तिम दशक से लेकर इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक के शुरुआती वर्षों में भी ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव न सिर्फ दुनिया के मानव जाति पर पड़ रहा है बल्कि पशु-पक्षी, जीव-जंतु, जंगल, तालाब एवं चारागाह इत्यादि पर पड़ रहा है।

ग्रीष्मकालीन ऋतु में पशुओं की शारिरिक क्रियाओं पर प्रभाव:

- शुष्क पशु हो या दुधारू पशु हो उनमें अपने शरीर के तापमान को गर्मी में भी सामान्य बनाये रखने के लिए पशुओं की शारीरिक क्रियाओं में कुछ बदलाव देखने को मिलते हैं।
- गर्मी के मौसम में पशुओं की श्वसन गति बढ़ जाती है, पशु हांपने लगते हैं, मुंह से लार गिरने लगती है। मध्य फरवरी और उसके अंत से ही मौसम में परिवर्तन प्रायः बदलता हुआ दिखाई देने लगता है जैसे जैसे समय बढ़ता जाता है वैसे वैसे पशुओं को गर्मी महसूस होने लगता है।
- पशुओं के शरीर में बाइकार्बोनेट आयनों की कमी और रक्त के पी.एच. में वृद्धि हो जाती है यह परिवर्तन सिर्फ और सिर्फ गर्मी के बढ़ने की वजह से पशुओं के शरीर में यह असर दिखाई देने लगता है।
- पशुओं के रूमेन में भोज्य पदार्थों के खिसकने की गति कम हो जाती है, जिससे पाच्य पदार्थों के आगे बढने की दर में कमी हो जाती है।
- त्वचा की ऊपरी सतह का रक्त प्रभाव बढ़ जाता है, जिसके कारण आतंरिक ऊतकों का रक्त प्रभाव कम हो जाता है।
- ड्राई मैटर इंटेक 50 प्रतिशत तक कम हो जाता है, जिसके कारण दुग्ध उत्पादन में कमी आ जाती है।

ग्रीष्मकालीन ऋतु में इन महत्त्वपूर्ण बातों का रखे विशेष ध्यान:

1. पशुओं को दिन के समय सीधी धूप से बचाएं।
2. फार्म के चारों तरफ छायादार वृक्ष लगायें।
3. पशुओं के पास पीने का पानी हमेशा रखें।
4. पशुओं को हरा चारा एवं रसीला चारा खिलाएं।
5. यदि पशुओं में असमान्य लक्षण नजर आते हैं तो नजदीकी पशुचिकित्सक से संपर्क करें।
6. यदि संभव हो तो डेयरी शेड में दिन के समय कूलर, पंखे आदि का इस्तेमाल करें।
7. पशुओं को संतुलित आहार दें।
8. अधिक गर्मी की स्थिति में पशुओं के शरीर पर पानी का छिड़काव करें।

पशुओं को दिन के समय सीधी धूप से बचाएं:

गर्मी के दिनों में सूर्य की किरणें बहुत जल्दी दिखाई देने लग जाता है और तापमान भी बदलने लगता है जिससे पशुओं की श्वसन क्रिया में समस्यायें होने लगती है अतः पशुओं को टहलने के लिए केवल सुबह / शाम का समय अनुकूल माना जाता है। इस समय पशुओं को श्वास लेने में कोई कठिनाई महसूस नही होती.अगर पशुओं को दोपहर के समय में खुले में छोड़ दिया जाये तो पशुओं के शरीर में पानी की कमी हो जाएगी और उनके शारीर का तापमान सामान्य दर से कई गुना बढ़ जायेगा और पशुओं में बीमार होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

फार्म के चारों तरफ छायादार वृक्ष लगायें:

ग्रीष्मकालीन समय में पशुओं के आवास और डेरी फार्म के आस-पास छायादार वृक्ष लगे होने चाहिए जिससे तेज ठंडी व गर्म हवाओं से पशुओं का बचाव हो सके एवं गर्मी में शीतल हवा भी मिल सके। गर्मी के दिनों छायादार वृक्षों का सबसे बड़ा लाभ ये होता है कि पशुओं के शरीर में ताप/ ऊर्जा का संतुलन बना रहता है।

पशुओं के पास पीने का पानी हमेशा रखें:

गर्मियों में विशेष रूप से पशुओं के लिए सदैव स्वच्छ पानी का प्रबंध रखना चाहिए ताकि पशुओं को आवश्यकतानुसार पानी प्राप्त होता रहे। पशुओं को पानी की आवश्यकता उनकी उम्र, चारे की मात्रा एवं गुणवत्ता तथा दुग्ध उत्पादन पर भी निर्भर करता है तथा इस पर वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। यदि बात करें गाय-भैंस की पानी की आवश्यकता को लेकर गाय-भैंस को औसत पोषण पर लगभग 27-28 ली. पानी की आवश्यकता जीवन निर्वाह हेतु अनिवार्य तथा प्रति कि.ग्रा दुग्ध उत्पादन के लिए लगभग 3.0 ली. पानी की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त पशुशाला की सफाई एवं बर्तनों आदि की धुलाई के लिए प्रति पशु लगभग 45-70 ली. पानी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार कुल मिलाकर एक पशु पर प्रतिदिन लगभग 110 ली. पानी की आवश्यकता पड़ती है।

पशुओं को हरा चारा खिलाएं:

गर्मियों में विशेष रूप से पशुओं के लिए सदैव हरे एवं रसीले चारे का प्रबंध रखना चाहिए। हरे चारे में अधिक मात्रा में नमी (लगभग 70-80 प्रतिशत) पायी जाती है इसके अतिरिक्त हरे एवं रसीले चारे पशुओं के शरीर के तापमान को सामन्य बनाये रखते है। हरे चारे से विटामिन्स तथा खनिज तत्त्वों के अलावा प्रोटीन व कार्बोहाइड्रेट्स प्राप्त होते है। गर्मी के दिनों में जहां तक संभव हो सके पशुओं को हरा चारा खिलाना चाहिए। हरे चारे की कमी को पूरा करने के लिए सर्दी में आवश्यकता से अधिक हरेचारों से बनाया गया "साइलेज" भी पशुओं को खिलाना चाहिए। पशुओं को गर्मियों में हमेशा ठंडे समय में ही चारा खिलाएं जैसे सुबह-शाम या रात में।

पशुओं में असमान्य लक्षण:

अत्यधिक गर्मी बढ़ जाने के कारण पशुओं में उपापचयी समस्याएं या मेटाबोलिक प्रोब्लम्स **पाचन प्रणाली के साथ साथ निर्जलीकरण का भी असर** उत्पन्न होने लगती है जिसकी वजह से पशु विशेष रूप से दुधारू पशु चारा-दाना त्याग देता है और दुग्ध उत्पादन में बहुत तेजी से गिरावट देखने को मिलता है यदि समय समय रहते इसका समाधान न किया जाये तो पशुपालक को अत्यधिक नुकसान उठाना पड़ सकता है। ग्रीष्मकालीन ऋतु में जब पर्यावरण में दिन का तापमान 42–48 डिग्री सेल्सियस (°C) तथा आर्द्रता 60 प्रतिशत से अत्यधिक हो जाता है तो पशुओं के पाचन प्रणाली के साथ साथ निर्जलीकरण का भी असर दिखने लगता है. जिसके कारण दुग्ध उत्पादन प्रभावित होने लगता है।

डेयरी शेड में दिन के समय कूलर, पंखे आदि का इस्तेमाल:

भारतीय स्वदेशी नश्ल के पशुओं में गर्मी सहन करने की छमता अत्यधिक होती है लेकिन शंकर नश्ल के पशु हो या विदेशी नश्ल के पशु हो उनमें गर्मी सहन करने की छमता बहुत ही कम पाई जाती है इसीलिए पशुशाला के अंदर हवा के आने तथा उसके जाने का प्रबंध होना चाहिए। दीवार में खिड़कियां आमने-सामने होनी चाहिए। पशुघर के अंदर पंखा तथा अंदर की हवा बाहर निकालने वाला पंखा अर्थात एग्जास्ट फैन लगाना आवश्यक है।

संतुलित आहार:

पोषक- तत्त्वों को इस अनुपात और मात्रा में उपलब्ध कराना है कि पशु को 24 घंटे तक आवश्यक शक्ति प्रदान कर सके संतुलित आहार कहलाता है। संतुलित आहार में पशुओं की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं उसे स्वस्थ रखने के लिए सभी आवश्यक पोषक-तत्त्व ठीक मात्रा एवं उचित अनुपात में उपलब्ध रहते है। पशुओं का भोजन ऐसा होना चाहिए जिसमें प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट्स विटामिन्स तथा खनिज तत्त्वों की उचित मात्रा में उपस्थित हो। किसी एक पोषक-तत्व

की अधिकता होने से भोजन अपाच्य हो सकता है और पशु को रोगी बना सकता है इसीलिये गर्मी के दिनों में पशुओं को संतुलित आहार देना ज्यादा लाभदायक माना जाता है। पशुओं का ऐसा दाना नहीं देना चाहिए जो अधिक ऊर्जा उत्पन्न करता हो जैसे चना, बिनोले की खली आदि। इसके स्थान पर मक्के का चूरा, गेहूं की चोकर, सरसों की खली आदि दे। ऐसे खाने से पशुओं के अंदर अधिक गर्मी उत्पन्न नहीं होगी और पशु ज्यादा चारा खा सकेंगे।

पशुओं के शरीर पर पानी का छिड़काव (पशुओं को नहलाना):

गर्मी के मौसम में पशुओं को सुबह-शाम नहलाना चाहिए। दुधारू पशुओं के लिए अगर पानी की उचित व्यवस्था सम्भव हो तो दिन में एक बार जरूर नहलाये। नहीं तो कम से कम 2-3 दिन में एक बार अवश्य नहालये इसके अलावा पशुओं के शरीर पर खुरैरा (ग्रूमिंग) जरूर करें।

ज्वार: खरीफ चारे की उत्तम फसल

दीपक कुमार

पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौधोगिकी विश्वविधालय, कानपुर

खरीफ के चारों में ज्वार की फसल सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है । यह रेतीली मिट्टी को छोड़कर लगभग सभी प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है । ज्वार की किस्मों में एक कटाई से लेकर चार कटाइयां देने की क्षमता है । एक कटाई वाली किस्में दलहनी चारे की फसलों के साथ मिलाकर भी लगाई जा सकती है । ज्वार के चारे में धुरिन नामक विषैले पदार्थ की मात्रा विशेषकर गर्मी के मौसम में अधिक हो जाती है । इस तरह का चारा पशुओं के लिए घातक होता है । इसलिए गर्मी के मौसम में उगाई गई ज्वार में पानी की कमी नहीं होनी चाहिए । पशुओं के लिए इसका चारा पर्याप्त रूप से पौष्टिक होता है । ज्वार का हरा चारा, कड़वी तथा साइलेज तीनों ही पशुओं के लिए उपयोगी और शक्तिवर्धक हैं ।

भूमि व खेत की तैयारी

ज्वार की खेती वैसे तो सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है परन्तु दोमट, बलुई दोमट, जिसमें जल निकास का अच्छा प्रबन्ध हो, सर्वोत्तम मानी गई है । ज्वार के लिए खेत की मिट्टी को भुरभुरी बनाना आवश्यक है । सिंचित इलाकों में खाली खेत में दो बार गहरी जुताई करके पानी लगाने के बाद बत्तर आने पर दो जुताइयां (एक दूसरे के आर पार) करके सुहागा लगाएं। गर्मी के मौसम में की जाने वाली बिजाई के लिए हो सके तो पलेवा गहरा करें ।

बीजाई का समय

सिंचित इलाकों में ज्वार की गर्मी की फसल 20 मार्च से 10 अप्रैल तक व खरीफ की फसल 25 जून से 10 जुलाई तक बुआई कर देनी चाहिए । जिन क्षेत्रों में सिंचाई उपलब्ध नहीं है वहां बरसात की फसल मानूसन में पहला मौका मिलते ही बुआई कर देनी चाहिए । अनेक कटाई वाली किस्मों/संकर किस्मों की बिजाई अप्रैल के पहले पखवाड़े में करनी चाहिए । यदि सिंचाई व खेत उपलब्ध न हो तो बिजाई मई के पहले सप्ताह तक की जा सकती है ।

बीज की मात्रा व बिजाई का तरीका

यदि खेत भली प्रकार तैयार हो तो बुआई सीडड्रिल या हल से 2.5 से 4 सैं.मी. गहराई पर एवं 25-30 से.मी. की दूरी पर लाइनों में करें । ज्वार की बीज दर प्रायः बीज के आकार पर निर्भर करती है । मोटे बीज की एक कटाई वाली किस्में जैसे एच.सी. 136, एच.सी. 171, एच.सी. 308 इत्यादि में बीज की मात्रा 20 से 24 किलोग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई करें । यदि खेत की तैयारी अच्छी प्रकार न हो सके तो छिटकाव विधि से बुआई की जा सकती है जिसके लिए बीज की मात्रा में 15-20 प्रतिशत वृद्धि आवश्यक है । एक कटाई वाली ज्वार की किस्म को लोबिया के साथ 2 : 1 अनुपात (2 लाईन ज्वार तथा

एक लाईन लोबिया) में बीजें तो चारे की गुणवत्ता और स्वादिष्टता दोनों ही बढ़ जाते हैं। अधिक कटाई वाली किस्में/संकर किस्मों के लिए 10-12 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ के हिसाब से डालें।

खाद

सिंचित या अधिक वर्षा वाले इलाकों में इस फसल के लिए 32 किलोग्राम नाइट्रोजन व 12 किलोग्राम फास्फोरस प्रति एकड़ की आवश्यकता होती है। सही तौर पर 70 किलोग्राम यूरिया और 75 किलोग्राम एस एस पी एक एकड़ में डालना पर्याप्त रहता है। यूरिया की आधी मात्रा (35 किलोग्राम) और एस एस पी की पूरी मात्रा (75 किलोग्राम) बिजाई से पहले डालें तथा यूरिया की बची हुई आधी मात्रा बिजाई के 30-35 दिनों बाद खड़ी फसल में डालें। कम वर्षा वाले व बारानी इलाकों में बिजाई का समय 20 किलोग्राम नाइट्रोजन (45 किलोग्राम यूरिया) प्रति एकड़ बिजाई से पहले डालें। अधिक कटाई देने वाली किस्मों में 20 किलो नाइट्रोजन व 12 किलो फास्फोरस प्रति एकड़ बिजाई से पहले व 12 किलो नाइट्रोजन प्रति एकड़ हर कटाई के बाद सिंचाई उपरान्त डालने से फसल तेजी से बढ़ती है और अधिक पैदावार मिलती है।

सिंचाई

वर्षा ऋतु में बोई गई फसल में आमतौर पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। यदि बरसात का अन्तराल बढ़ जाए तो आवश्यकता के अनुसार सिंचाई करें। अधिक बरसात के कारण पानी इकट्ठा नहीं होने देना चाहिए। मार्च व अप्रैल में बोई गई फसल में पहली सिंचाई बिजाई के 15-20 दिन बाद तथा आगे की सिंचाई 10-15 दिन के अन्तर पर करें। मई-जून में बोई गई फसल में 10-15 दिन के बाद पहली सिंचाई करें तथा बाद में आवश्यकतानुसार करें। अधिक कटाई वाली किस्मों में हर कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करें। इससे फुटाव जल्दी व अच्छा होगा।

खरपतवार नियन्त्रण

ज्वार में खरपतवार की समस्या विशेषतौर पर वर्षाकालीन फसल में अधिक पायी जाती है। सामान्यतः गर्मियों में बोईगई फसल में एक गुड़ाई पहली सिंचाई के बाद बत्तर आने पर करें दूसरी गुड़ाई बरसात में जब खरपतवारों का प्रकोप ज्यादा बढ़ जाए तब करें। इससे खरपतवार नियन्त्रण में रहते हैं और जमीन में नमी भी बनी रहती है। खरीफ में बोई गई फसल में खरपतवार काफी ज्यादा संख्या में पाए जाते हैं। इसके लिए एक निराई गुड़ाई बिजाई के 20-25 दिन बाद करें या पांच किलोग्राम एट्राजीन (सक्रिय अवयव) 625 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से बिजाई के तुरन्त बाद या बिजाई के 24 घंटे के अन्दर छिड़काव करें।

फसल सुरक्षा

अधिक विलम्ब से अथवा समय पूर्व बोई गई फसल में कीड़ों व बीमारियों का प्रकोप अधिक होता है। ज्वार की फसल को गोभ छेदक मक्खी शुरू-शुरू में तथा तना छेदक कीड़ा पूरे वृद्धि काल में व छोटी मक्खी सिट्टे निकलने की अवस्था में नुकसान पहुंचाती है। गोभ छेदक मक्खी फसल को मार्च-अप्रैल और

जुलाई-सितम्बर में नुकसान पहुंचाती है । इसलिए इससे बचने के लिए फसल को मध्य मई से जून तक बुआई करें । गोभ छेदक मक्खी व तना छेदक की रोकथाम के लिए कार्बेरिल 1 कि.ग्रा. को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हे0 के हिसाब से छिड़काव करें । अगर आवश्यक हो तो दूसरा छिड़काव इसके 10-12 दिन बाद करें । इसका चारा पशुओं को छिड़काव के 21 दिन तक न खिलाएं।

चारे की ज्वार पर आमतौर पर एन्थ्राक्नोस, पत्ती का झुलसा एवं लाल धब्बे इत्यादि की बीमारियां लगती हैं जो इसकी गुणवत्ता एवं हरे चारे को कम करती है । ऐसी प्रतिरोधक किस्में जैसे एच.सी. 308, एच.सी. 171 और एच.सी. 260 का प्रयोग करें जिनमें यह रोग नहीं आते क्योंकि चारे की ज्वार में किसी भी प्रकार के रसायन के छिड़काव को बढ़ावा नहीं दिया जाता है । भूमि में उपस्थित इन रोगों के तत्त्वों की रोकथाम के लिए बीज को बिनोमिल अथवा सेरेसन वैट (2-3 ग्राम प्रति किलोग्राम) बीज के हिसाब से बीज उपचार करें ।

कटाई और एच.सी.एन. का प्रबन्ध

चारे की अधिक पैदावार व गुणवत्ता के लिए कटाई 50 प्रतिशत सिट्टे निकलने के पश्चात् करें । एच.सी.एन. (धुरिन) ज्वार में एक जहरीला तत्त्व प्रदान करता है अगर इसकी मात्रा 200 पी.पी. एम. से अधिक हो तो यह पशुओं के लिए हानिकारक हो सकता है । 35-40 दिन की फसल में एचसी.ए

न. की मात्रा अधिक होती है । लेकिन 40 दिन के बाद इसकी मात्रा घटने लगती है । अतः ज्वार के चारे को 40 दिन से पहले नहीं काटना चाहिए । अगर कटाई 40 दिन में करनी अत्यन्त आवश्यक हो तो कटे हुए चारे को पशुओं को खिलाने से पहले 2-3 घंटे तक खुली हवा में छोड़ दें ताकि एच.सी.एन. की मात्रा कुछ कम हो सके ।

अधिक कटाई वाली किस्मों में हरे चारे की अधिक पैदावार के लिए पहली कटाई बिजाई के 50 से 55 दिनों के पश्चात् एवं शेष सभी कटाइयां 35-40 दिनों के अन्तराल पर करें । अगर पहली कटाई देर से की जाए तो सूखे चारे में वृद्धि होती है परन्तु हरे चारे की पैदावार व गुणवत्ता कम हो जाती है । अच्छे फुटाव के लिए फसल को भूमि से 8-10 से. मी. की ऊँचाई पर से काटें।

बीज का बनाना

दाने वाली फसल के लिए बिजाई 10 जुलाई तक करें । इस समय बोई गई फसल से दाने की पैदावार सबसे ज्यादा मिलती है । जल्दी बोई गई फसल में मिज कीड़े का आक्रमण इतना अधिक होता है कि दाने का रस चूसने से पैदावार काफी घट जाती है । मोटे दाने वाली किस्म के लिए बीज की मात्रा 20-25 किलोग्राम तथा छोटे दाने वाली किस्म के 16-20 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त है । इसकी बिजाई लाइनों में 45 सैं.मी. की दूरी पर करें । इसके लिए 40 किलोग्राम शुद्ध नाइट्रोजन तथा 30 किलोग्राम शुद्ध फास्फोरस बिजाई से पहले तथा इतनी ही शुद्ध नाइट्रोजन की मात्रा बिजाई के 40 दिन बाद खड़ी फसल में डालें। निराई गोड़ाई कसौले से या खरपतवारनाशक दवाइयों द्वारा उसी विधि से करें जैसे कि खरीफ में ज्वार की चारे वाली फसल में करते हैं । सिंचाई आवश्यकता के अनुसार करें । फूल आने पर

सिंचाई करना बहुत आवश्यक है। कई किस्में पकने तक हरी रहती हैं। इसलिए कटाई के लिए पत्ते सूखने का इन्तजार न करें। जब दाना दबाने से सख्त महसूस होता है उस समय फसल काट लें। अधिक कटाई वाली किस्म एस.एस.जी. 59-3 से बीज बनाना है तो बिजाई मध्य जुलाई में करें और इससे चारे के लिए कोई कटाई न लें। यह फसल अक्तूबर अन्त या नवम्बर के शुरू में पककर तैयार हो जाएगी। परन्तु इससे बीज की पैदावार सिर्फ 2.0-2.5 क्विंटल प्रति हे0 ही मिल पायेगी। बीज की अधिक पैदावार लेने के लिए इसकी बिजाई मध्य मार्च-अप्रैल में करें और 3-4 कटाइयां लेने के पश्चात् इसको सर्दियों में रटून छोड़ दें। रटून फसल सर्दी में बढ़कर रुक जाती है इसलिए इनके लाइनों के बीच जई की बिजाई करें और खाद और पानी जई के हिसाब से लगायें। फरवरी के पहले सप्ताह में इस चारे के लिए काटने के बाद लाइनों के बीच में कसौले से नलाई करें या हल चलाकर तैयार करें। अब सुडान घास को बीज बनने के लिए छोड़ दें। सिंचाई 15-20 दिन के अन्तर पर करें। इस मौसम में बीमारी व कीड़ों का आक्रमण बहुत ही कम होता है। रटून वाली फसल में बीज की पैदावार खरीफ की बजाए 2.0-2.5 गुणा (5.6 कि./है.) ज्यादा मिलेगी। यह कटाई के लिए अप्रैल अन्त से मध्य मई तक तैयार हो जाती है। रटून वाली फसल का बीज ज्यादा शुद्ध और स्वस्थ होता है।

चारे की विभिन्न किस्में/संकर किस्में

किस्म/संकर किस्म	अवधि	पैदावार (कि./है.)	
		दाना	चारा
CSH1	90-100	3000-3500	7500
CSH2	115-120	3000-3500	-
CSH3	150-170	3500-3800	-
CSH4	110-105	3500-3800	-
CSH5	100-120	3800-4000	9300
CSH6	95-100	3376	8100
CSH9	105-110	4000-4200	9800
CSV 1	95-100	3000-5000	-
CSV 2	105-110	3000-3500	-
CSV 3	105-110	3500-4000	-
CSV 4	105-110	3000-3500	-
CSV 5	110-120	3000-3500	-
CSV 6	115-120	3200-3500	-
CSV 9	110-115	3000-3500	8940
CSV 10	110-115	3000-3500	9010
CSV 11	110-115	3250	9600

केंचुआ खाद: मृदा स्वास्थ्य के लिए वरदान

डॉ० संदीप प्रकाश उपाध्याय, डॉ० विवेक प्रताप सिंह, डॉ० राहुल कुमार सिंह, श्री अवनीश कुमार सिंह, डॉ० अजीत कुमार श्रीवास्तव, श्रीमती श्वेता सिंह तथा यश कुमार सिंह
महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केंद्र, चौकमाफी, पीपीगंज, गोरखपुर

मनुष्य के लिए केंचुए का महत्व सर्वप्रथम सन 1881 में विश्व विख्यात जीव वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने अपने 40 वर्षों के अध्ययन के बाद बताया। भूमि में पाए जाने वाले केंचुए खेत में पड़े हुए पेड़-पौधों के अवशेषों एवं कार्बनिक पदार्थों को खाकर छोटी-छोटी गोलियों के रूप में परिवर्तित कर देते हैं जो पौधों के लिए देशी खाद का काम करती है। इस प्रकार केंचुआ खाद खेती के लिए बहुत फायदेमंद है। केंचुओं द्वारा भूमि की उर्वरता, उत्पादकता, और भूमि के भौतिक, आर्सेनिक व जैविक गुणों को लम्बे समय तक अनुकूल बनाये रखने में मदद मिलती है।

केंचुए भोजन के रूप में ग्रहण की गयी कार्बनिक पदार्थों की कुल मात्रा का 5- 10% भाग शरीर की कोशिकाओं द्वारा अवशोषित करते हैं और शेष मल के रूप में विसर्जित हो जाता है जिसे वर्मीकास्ट कहते हैं। नियंत्रित परिस्थितियों में केंचुओं को व्यर्थ कार्बनिक पदार्थ खिलाकर पैदा किये गये वर्मीकास्ट और केंचुओं के मृत अवशेष, अंडे, कोकून, सूक्ष्मजीव आदि के मिश्रण को केंचुआ खाद कहते हैं। नियंत्रित दशा में केंचुओं द्वारा केंचुआ खाद उत्पन्न करने की विधि को वर्मी कम्पोस्टिंग तथा केंचुआ पालन की विधि को वर्मीकल्चर कहते हैं।

वर्मीकम्पोस्ट क्या है ?

वर्मी-कम्पोस्ट को वर्मीकल्चर या केंचुआ पालन भी कहते हैं। केंचुओं के मल से तैयार खाद ही वर्मी कम्पोस्ट कहलाती है। यह सब प्रकार की फसलों के लिए प्राकृतिक, सम्पूर्ण एवं संतुलित आहार है। एक प्रकार की जैविक खाद है जिसमें केचुए के साथ कार्बनिक पदार्थों व गोबर को एक उचित वातावरण में रख कर खाद के रूप में परिवर्तित किया जाता है जिसे वर्मी कम्पोस्ट कहते हैं केचुए जैविक पदार्थों का उपयोग अपने भोजन के रूप में करते हैं। इनकी विशिष्ट पाचक प्रक्रिया से परिवर्तित यह जैविक अवशेष केचुआ खाद (वर्मी कम्पोस्ट) कहलाता है। वर्मीकम्पोस्ट में 1.25-2.5% नत्रजन, 0.75-1.6% फोस्फोरस तथा 0.5-1.1% पोटाश की मात्रा उपलब्ध होती है।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने हेतु आवश्यक कार्बनिक पदार्थ:

1. **कृषि या फसल अवशेष:** पुआल, भूसा, गन्ने की खोई, पत्तियाँ, खरपतवार, फूस, फसलों के डंठल, बायोगैस अवशेष, गोबर आदि।
2. **घरेलू तथा शहरी कूड़ा कचरा:** सब्जियों के छिलके, फलों के छिलके तथा अवशेष, सब्जी मण्डी का कचरा, भोजन का अवशेष आदि।
3. कृषि उद्योग सम्बन्धी ब्यर्थ पदार्थ: वनस्पति तेल शोध मिल, चीनी मिल, शराब उद्योग, बीज तथा खाद्य प्रसंस्करण उद्योग तथा नारियल उद्योग के अवशिष्ट पदार्थ।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की सामान्य विधि:

(।). 3 m. x 1 m. x 70 cm. (L x W x D)

(।।). 2 m. x 2 m. x 1 m. (L x W x D)

(।।।). 3 m. x 2 m. x 1 m. (L x W x D)

- इस नाप के गड्ढे जमीन की सतह से ऊपर बनाना चाहिए।
- प्रति वर्ग मी. क्षेत्रफल हेतु 1000 केचुआ या 1 किग्रा. केंचुआ या 100 किग्रा. कार्बनिक पदार्थ हेतु 10 किग्रा. केंचुआ की आवश्यकता होती है।

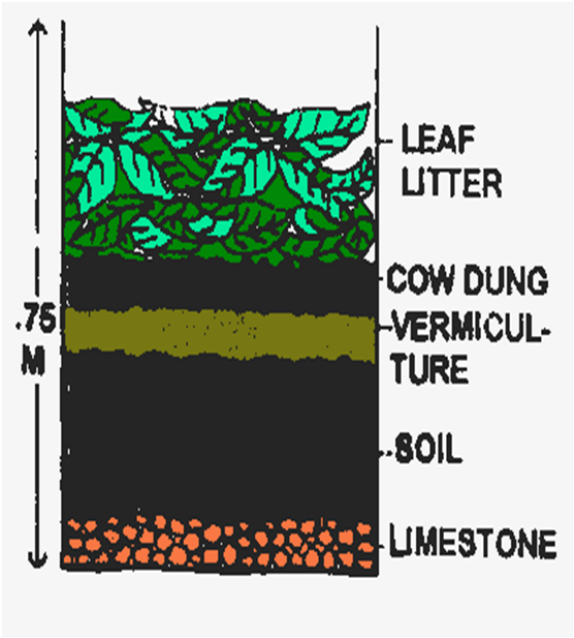

चित्र 1. वर्मी पिट की भराई की आवश्यक सामग्री एवं विधि

- दर्शाए चित्र के अनुसार सबसे नीचे 11 सेमी. ईट की परत, 20 सेमी. मोरंग या बालू की दूसरी तह एवं 15 सेमी. उपजाऊ मिटटी की तह लगायें।
- तत्पश्चात हल्के पानी से नम करें।
- प्रति वर्ग मी. क्षेत्र अनुसार 1 किग्रा. केचुआ, अध् सड़ी गोबर की खाद प्रयोग करें।
- साथ ही अध् सड़ी पत्तियाँ, घास फूस सब्जी व फलों के छिलके , भूसा या पुआल की कुट्टी का प्रयोग भी करें।
- 20- 25 दिन तक आवश्यकतानुसार हल्का पानी का छिड़काव करते रहें। 60- 70 दिन में केंचुआ खाद तैयार हो जाती है।

ड्रोन तकनीक का कृषि में प्रयोग

डा. एल. सी. वर्मा, डा. वी. के. सिंह, डा. अंगद प्रसाद, डा. अजीत वत्स
वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, वैज्ञानिक कृषि विज्ञान केन्द्र, पिलखी, मऊ

ड्रोन का उपयोग उत्तर प्रदेष के कृषि विज्ञान केन्द्रों के शैक्षणिक प्रक्षेत्र पर प्रदर्शन के रूप में किया जा रहा है और फसलों पर कृषि रसायनों और पानी में घुलनशील उर्वरकों के छिड़काव के लिए इसके बहुउद्देशीय उपयोग की काफी संभावना है । कृषि विज्ञान केन्द्र के वैज्ञानिक ड्रोन के तकनीकी मापदंडों और सुरक्षा विशेषताओं की जांच कर रहे है ।

कृषि विज्ञान केन्द्र, पिलखी, मऊ के वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष डा.एल. सी. वर्मा ने दिनांक 29 जनवरी 2022 को तमिलनाडु की एक कंपनी के माध्यम से केन्द्र के शैक्षणिक प्रक्षेत्र पर उप कृषि निदेषक मऊ, जिला कृषि अधिकारी मऊ एवं जिला गन्ना अधिकारी मऊ के समक्ष सफल प्रदर्शन कराया गया। प्रदर्शन के दौरान एक ड्रोन ने कृषि प्रक्षेत्र के ऊपर से उड़ान भरी और प्रदर्शन के दौरान खड़ी फसल गेहूँ के ऊपर नैनो यूरिया का छिड़काव किया। डा.एल. सी. वर्मा ने बताया गया कि एक ड्रोन ऑटो सेंसर के माध्यम से एक निश्चित ऊंचाई पर उड़ान भरकर फसलों पर लगभग 10 लीटर तरल का छिड़काव कर सकता है । एक एकड़ प्रक्षेत्र पर छिड़काव करीब 10 मिनट में किया जा सकता है ।

ड्रोन निर्माता कंपनी के प्रतिनिधियों ने कहा कि ड्रोन सेंसर के माध्यम से अपनी उड़ान में पेड़ों और अन्य बाधाओं से बचता है । ड्रोन के एक उच्च गुणवत्ता वाले नोजल द्वारा धुंध स्प्रे फसल के हर हिस्से को कवर करता है, जो पारंपरिक छिड़काव विधियों की तुलना में अधिक उपयोगी और किफायती है । ड्रोन का उपयोग केवल हरे क्षेत्रों में किया जा सकता है और हवाई अड्डों और सैन्य क्षेत्रों में इसकी उड़ान निषिद्ध है ।

भारत की कृषि में ड्रोन का प्रयोग

भारत की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर है। खेती अधिकांश ग्रामीण परिवारों के लिए कृषि आय का मुख्य स्रोत बनी हुई है जो इसके निर्यात का एक बड़ा हिस्सा भी है। हालांकि, कृषि के बढ़ते महत्व के बावजूद, यह क्षेत्र अभी भी तकनीकी प्रगति में बहुत पीछे है। प्रतिकूल मौसम की स्थिति और अनियंत्रित कीटों के झुण्डों के कारण फसल की विफलता इस परिदृश्य में प्रमुख कारक रहे हैं। इसके अलावा, भारतीय किसान अब भी सिंचाई के लिए मानसून की बारिश पर निर्भर हैं और अन्य कृषि प्रथाओं के लिए सदियों पुराने तरीकों का उपयोग करते हैं। इसलिए, किसानों के अथक प्रयासों के बावजूद कृषि उपज की गुणवत्ता और मात्रा से कभी-कभी समझौता किया जाता है।

ड्रोन तकनीक द्वारा फसल की विफलता का पहले से पता लगाया जा सकता है, और आवश्यक कदम उठाए जा सकते हैं। भारत में कृषि क्षेत्र को बीमार करने वाली समस्याओं से निपटने के लिए पारंपरिक खेती के तरीकों और कृषि-ड्रोन जैसे अभिनव समाधानों का एक संयोजन हो सकता है। ड्रोन फसल निगरानी के क्षेत्र में प्रमुख साधन बन सकते हैं।

ड्रोन और भारतीय कृषि उद्योग

ड्रोन अनक्रीव्ड हवाई वाहन (यूएवी के रूप में भी जाना जाता है) हैं, जिनका उपयोग विभिन्न उद्योगों में निगरानी के लिए किया जाता है। अब तक वे मुख्य रूप से खनन और निर्माण, सेना और शौकियों जैसे औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने वाली कंपनियों द्वारा उपयोग किए जाते थे।लेकिन अब, ड्रोन प्रौद्योगिकी कृषि के विभिन्न क्षेत्रों में भी उपयोग के लिए तेजी से उपलब्ध है। यद्यपि यह प्रौद्योगिकी अभी भी भारत में नई है, लेकिन कई कंपनियां कोशिश कर रही हैं ताकि यह भारतीय किसानों के लिए आसानी से उपलब्ध हो सके और कृषि उत्पादन में दक्षता बढ़ाने के लिए उपयोग करने के लिए तैयार हो सके।

कृषि में ड्रोन का उपयोग करने के लाभ

कृषि में ड्रोन तकनीक का उपयोग कृषि लागत को कम करके उत्पादन बढाने के लिए है। यह उभरती हुई तकनीक समय को कम करने और किसानों की कार्य क्षमता बढ़ाने में मदद कर सकती है। कृषि क्षेत्र में ड्रोन का उपयोग आने वाले समय में बढ़ने की उम्मीद है और इसलिए यह जानना आवश्यक है कि इस तकनीक का विवेकपूर्ण उपयोग कैसे किया जाए।

मृदा और प्रक्षेत्र विश्लेषण

कुशल प्रक्षेत्र योजना बनाने के लिए कृषि में ड्रोन का उपयोग मिट्टी और प्रक्षेत्र विश्लेषण के लिए किया जा सकता है। ड्रोन का उपयोग मिट्टी की जाँच, इलाके की स्थिति, मिट्टी के कटाव, पोषक तत्वों की स्थिति और मिट्टी की उर्वरता, मृदा में नमी स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए सेंसर को लगाकर किया जा सकता है।

फसल की निगरानी

फसल निगरानी, बीज बोए जाने के समय से लेकर फसल की कटाई के समय तक फसल की प्रगति का

सर्वेक्षण है। इसमें सही समय पर उर्वरक प्रदान करना, कीटों के हमले की जांच करना और मौसम की स्थिति के प्रभाव की निगरानी करना शामिल है।

इस स्तर पर किसी भी त्रुटि के परिणामस्वरूप फसल की विफलता हो सकती है। फसल निगरानी, अगले खेती के मौसम के लिए समझने और योजना बनाने में मदद करती है। ड्रोन, इन्फ्रारेड कैमरों के साथ खेत का निरीक्षण करके प्रभावी फसल निगरानी में मदद कर सकते हैं और उनकी वास्तविक समय की जानकारी के आधार पर किसान खेत में पौधों की स्थिति में सुधार के लिए सक्रिय उपाय कर सकते हैं।

बागवानी

ड्रोन मशीन किसानों के प्रक्षेत्र पर पेड़ों और फसलों को लगाने में मदद कर सकते हैं। यह तकनीक न केवल श्रम की बचत करेगी, बल्कि ईंधन को बचाने में भी मदद करेगी। जल्द ही यह उम्मीद की जाती है कि बजट के अनुकूल ड्रोन का उपयोग विशाल ट्रैक्टरों के स्थान पर किया जाएगा, क्योंकि वे हानिकारक गैसों का उत्सर्जन करते हैं और इस प्रक्रिया में पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं।

पशुधन प्रबंधन

ड्रोन का उपयोग विशाल पशुधन की निगरानी और प्रबंधन के लिए किया जा सकता है क्योंकि उनके सेंसर में उच्च-रिजॉल्यूशन इन्फ्रारेड कैमरे होते हैं, जो एक बीमार जानवर का पता लगा सकते हैं और तदनुसार तेजी से कार्रवाई कर सकते हैं। इसलिए सटीक डेयरी फार्मिंग पर ड्रोन का प्रभाव जल्द ही एक नया वरदान साबित होने वाला है।

कृषि विज्ञान केन्द्र, पिलखी, मऊ में ड्रोन द्वारा फसल की निगरानी

फसल पर छिड़काव

एग्रीड्रोन का उपयोग रसायनों के छिड़काव के लिए किया जा सकता है जिनके पास संसाधन उपलब्ध है उन्हें पारंपरिक तरीकों की तुलना में बहुत कम समय में फसलों पर उर्वरकों और कीटनाशकों

का छिड़काव किया जा सकता है । इस प्रकार ड्रोन प्रौद्योगिकी सटीक कृषि के लिए एक नए युग की शुरुआत कर सकती है ।

फसल स्वास्थ्य की जाँच

खेती एक बड़े पैमाने पर की जाने वाली गतिविधि है जो एक एकड़ या अधिक भूमि पर हो सकती है । मिट्टी के स्वास्थ्य और जो फसल लगाई गई है उसकी निगरानी के लिए निरंतर सर्वेक्षण आवश्यक हैं । भौतिक रूप से निगरानी करने पर, इसमें काफी समय लग सकते हैं और फिर भी मानव त्रुटि के लिए आषंका बनी रहती है परन्तु ड्रोन कुछ ही घंटों में यह काम कर सकते हैं । इन्फ्रारेड मैपिंग के साथ ड्रोन मिट्टी और फसल दोनों के स्वास्थ्य के बारे में जानकारी एकत्र कर सकते हैं ।

रसायनों के अति प्रयोग से बचें

ड्रोन कीटनाशकों और अन्य रसायनों के अत्यधिक उपयोग को कम करने में विशेष रूप से प्रभावी साबित हो सकते हैं । ये रसायन वास्तव में फसल की रक्षा करने में मदद करते हैं लेकिन, इनका अति प्रयोग हानिकारक साबित हो सकता है । ड्रोन, कीट हमलों के सूक्ष्म संकेतों का पता लगा सकते हैं, और हमले की डिग्री और सीमा के बारे में सटीक डेटा प्रदान कर सकते हैं । यह किसानों को उपयोग किए जाने वाले आवश्यक रसायनों की गणना करने में मदद कर सकता है जो उन्हें नुकसान पहुंचाने के बजाय केवल फसलों की रक्षा करेंगे।

मौसम पूर्वानुमान

मौसम की स्थिति एक किसान का सबसे अच्छा दोस्त और सबसे बुरा दुश्मन भी हो सकता है । चूंकि इनकी सटीक भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है इसलिए मौसम में अचानक बदलाव के लिए तैयार करना बेहद मुश्किल हो जाता है । ड्रोन का उपयोग आगामी मौसम की स्थिति का पता लगाने के लिए किया जा सकता है । बेहतर भविष्यवाणियां करने के लिए पहले से ही स्टॉर्म ड्रोन का उपयोग किया जा रहा है । मौसम की सटीक जानकारी का उपयोग किसानों को बेहतर तरीके से तैयार करने के लिए किया जा सकता है । तूफानों की अग्रिम सूचना या बारिश की कमी का उपयोग फसल को लगाए जाने के पूर्व प्रस्तावित कार्य योजना बनाने के लिए किया जा सकता है और बाद के चरण में लगाए गए फसलों की देखभाल कैसे करें जो मौसम के लिए सबसे उपयुक्त होगा ।

मॉनिटर विकास

यहां तक कि जब सब कुछ योजना के अनुसार चल रहा है, तो फसलों का सर्वेक्षण और निगरानी करने की आवश्यकता होती है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि फसल के समय उपज की सही मात्रा प्राप्त होगी। यह भविष्य की योजना के लिए भी महत्वपूर्ण है, चाहे वह खुले बाजार के लिए सही मूल्य निर्धारित करने के बारे में हो, या चक्रीय फसलों की कटाई के बारे में हो। ड्रोन फसल के विकास के हर चरण के बारे में सटीक डेटा प्रदान कर सकते हैं और संकट आने से पहले ही किसी भी बदलाव की रिपोर्ट कर सकते हैं । मल्टीस्पेक्ट्रल छवियां, स्वस्थ और अस्वास्थ्यकर फसलों के बीच सूक्ष्म अंतर के बारे में

सटीक जानकारी भी प्रदान कर सकती हैं जिन्हें नग्न आंखों से देखा नही जा सकता है। उदाहरण के लिए, तनावग्रस्त फसलें स्वस्थ फसलों की तुलना में कम निकट-अवरक्त प्रकाश को प्रतिबिंबित करेंगी। इस अंतर का पता हमेशा मानव आंख द्वारा नहीं लगाया जा सकता है। लेकिन ड्रोन शुरुआती दौर में यह जानकारी दे सकते हैं।

भू-फेन्सिंग

ड्रोन पर लगाए गए थर्मल कैमरों से जानवरों या इंसानों का आसानी से पता लगाया जा सकता है। इसलिए, ड्रोन जानवरों के कारण बाहरी नुकसान से खेतों की रक्षा कर सकते हैं, खासकर रात में।

कृषि ड्रोन के लाभ

सुरक्षा -ड्रोन का संचालन प्रशिक्षित ड्रोन पायलटों द्वारा किया जाता है। अतः इनके दुरूपयोग की कोई संभावना नहीं है।

उच्च दक्षता- ड्रोन के परिचालन में कोई देरी नहीं होती है और यह मानव श्रम की गति को कई गुना बढ़ा सकता है।

पानी की बचत - पारंपरिक छिड़काव विधियों की तुलना में कृषि ड्रोन अल्ट्रा-कम मात्रा (यूएलवी) छिड़काव तकनीक का उपयोग करते हैं, इस प्रकार अधिक पानी की बचत होती है।

कम लागत और रख-रखाव आसान-कृषि ड्रोन मजबूत हैं, लागत में कम हैं, और न्यूनतम रखरखाव की आवश्यकता होती है। कुछ प्रमुख विशेषताओं में एक अलग करने योग्य कंटेनर, कम लागत वाले फ्रेम, कीटनाशकों का सटीक छिड़काव शामिल है।

कृषि ड्रोन की सीमाएं

कनेक्टिविटी समस्या- अधिकतर, ऑनलाइन कवरेज ग्रामीण क्षेत्रों में अनुपलब्ध होता है। ऐसी परिस्थितियों में एक किसान को इंटरनेट कनेक्टिविटी में निवेश करने की आवश्यकता होती है जो एक आवर्ती खर्च में बदल सकती है।

मौसम निर्भर- ड्रोन अच्छे मौसम की स्थिति पर बहुत अधिक निर्भर हैं। बारिश या हवा के मौसम की स्थिति में, ड्रोन उड़ाना उचित नहीं है।

ज्ञान और कौशल- नई तकनीक का उपयोग करना एक स्वागत योग्य परिवर्तन है, लेकिन दैनिक रूप से इसका उपयोग करने के लिए सही कौशल और पर्याप्त ज्ञान की आवश्यकता होती है। एक औसत किसान ड्रोन कार्यों को समझने के लिए संघर्ष कर सकता है या तो उसे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए या किसी अनुभवी व्यक्ति पर निर्भर रहना चाहिए।

कृषि ड्रोन का उपयोग बढ़ रहा है

भारत में ड्रोन आधारित कई कृषि परियोजनाएं चल रही हैं। निम्न वास्तविक जीवन परिदृश्यों पर विचार करें तो पहली बार भारत सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय फसल अनुसंधान संस्थान को कृषि अनुसंधान गतिविधियों के लिए ड्रोन का उपयोग करने की अनुमति दी। इस कदम के साथ सरकार को उम्मीद है कि

नवोदित शोधकर्ताओं और उद्यमियों को 6.6 लाख से अधिक भारतीय गांवों के लिए बजट के अनुकूल ड्रोन समाधान देखने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।

हालांकि उपयोग सशर्त होगा, फिर भी यह एक क्रांतिकारी कदम है । ड्रोन कृषि में एक बड़ी भूमिका निभाने के लिए तैयार हैं, खासकर सटीक कृषि, फसल की उपज में सुधार और टिड्डी नियंत्रण सहित क्षेत्रों में।

निष्कर्ष

भविष्य को देखते हुए ड्रोन प्रौद्योगिकी कृषि क्षेत्र को बदलने जा रही है । कुछ भारतीय स्टार्टअप भी उद्योग में रुचि दिखा रहे हैं और कम लागत वाले ड्रोन में निवेश करने का लक्ष्य रखते हैं, जो किसानों की मदद कर सकते हैं और साथ ही साथ ग्रामीण युवाओं के लिए रोजगार के अवसर पैदा कर सकते हैं और किसानों के ज्ञान को भी बढ़ा सकते हैं ।हालांकि, उद्योग को बढ़ती आबादी, किसानों की जरूरतों, परिचालन नीतियों और सिकुड़ते खेतों को ध्यान में रखते हुए परिपक्व सुधारों की आवश्यकता है । इसके अलावा, अभी भी ड्रोन बाजार को आगे बढ़ाने के लिए प्रशिक्षित पायलटों की आवश्यकता है । हमारे किसान और ड्रोन ऑपरेटर परिवर्तन के अग्रदूत हैं । कुल मिलाकर, यह देखना दिलचस्प होगा कि चीजें कैसे आगे बढ़ती हैं, और ड्रोन के प्रयोग लंबे समय तक कितने उपयोगी होते हैं ।

दुधारू पशुओं का पोषण प्रबन्ध

'डा. एल. सी. वर्मा, 'डा. वी. के. सिंह, अंगद प्रसाद एवं ''डा. फूल कुमारी
वरिष्ठ वैज्ञानिक कृषि विज्ञान केन्द्र, मऊ
''वैज्ञानिक गृह विज्ञान, कृषि विज्ञान केन्द्र, हमीरपुर

प्रस्तावना

भारत का दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान है । यह उत्पादकता के कारण नहीं बल्कि पशु संख्या अधिक होने के कारण है । देश में हर साल लगभग 165 मिलियन टन दूध का उत्पादन होता है और वर्तमान में वैष्विक दूध उत्पादन का लगभग 9.5 प्रतिशत योगदान देता है । भारत दुनिया में दूध का सबसे बड़ा उपभेक्ता भी है । दूध संग्रह, परिवहन, प्रसंस्करण और वितरण की एकीकृत सहकारी प्रणाली देश में दूध के बड़े पैमाने पर उत्पादन कें लिये जिम्मेदार है । वर्ष 2016-17 में भारत ने 165404 हजार टन दूध का उत्पादन किया था। देश की सबसे ज्यादा भैंसों की आबादी उत्तर प्रदेष में है और दूसरी सबसे ज्यादा पशुधन आबादी भी वहीं है । राज्य में अधिकांश ग्रामीण आबादी पशुधन और डेयरी में लगी हुई है । साल 2016-17 में उत्तर प्रदेष ने 27770 हजार टन दूध का उत्पादन किया। इसके बावजूद दुग्ध उत्पादन की वृद्धि दर 3.5 से 4.5 प्रतिशत के करीब है । लेकिन फिर भी अन्य देशों के अपेक्षाकृत कम है । दुग्ध उत्पादन में वृद्धि के लिये जो अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू है, वो है दुधारू पशुओं का आहार। पशुओं को नियन्त्रित रूप में सर्वोत्तम आहार एवं चारा खिलाना चाहिये। जहॉ तक सम्भव हो स्वयं की उपलब्ध जमीन पर उगाया हुआ एवं सही समय पर काटा हुआ चारा दिया जाना चाहिये।

खुराक- पशुओं द्वारा भूख को शांत करने कें लिये एक समय में जो भोजन खिलाया जाता है उसे खुराक कहते हैं ।

आहार- भोजन की वह आवश्यक मात्रा जिसे पशु 24 घंण्टे के दौरान खाते हैं, आहार कहलाती है ।

संतुलित आहार- ऐसा आहार जो पशु को आवश्यक पोषक तत्वों प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, खनिज लवण एवं विटामिन का उचित अनुपात एवं मात्रा में प्रदान करे, जिससे कि पशु की एक दिन की बढ़वार, स्वास्थ्य, दुग्ध उत्पादन, प्रजनन क्षमता आदि बनायें रखें, संतुलित पशु आहार कहलाता है ।

पशु का शरीर 75 प्रतिशत जल, 20 प्रतिशत प्रोटीन, 5 प्रतिशत खनिज पदार्थों एवं 1 प्रतिशत से भी कम कार्बोहाइड्रेट का बना होता है । शरीर की संरचना पर आयु व पोषण का बहुत प्रभाव होता है, बढ़ती उम्र के साथ जल की मात्रा में कमी परन्तु वसा में वृद्धि होती है । पशुओं को संतुलित आहार खिलाने से पशु उत्पादन क्षमता में 30-35 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है ।

पशु आहार के आवश्यक तत्व

कार्बोहाइड्रेट	प्रोटीन	खनिज लवण	विटामिन
घुलनशील	शुद्ध प्रोटीन	वृहत तत्व	वसा युक्त
शर्करा, मांड	अप्रोटीन	बिरल तत्व	जल युक्त
हेमीसेल्युलोज			
सेल्युलोज			

कार्बोहाइड्रेट

ये हाइड्रोजन और आक्सीजन से मिलकर बनते हैं । कार्बोहाइड्रेट दो तरह के होते है । इसमें शर्करा, मॉड, हेमीसेल्यूलोज ज्यादा पाचनशील सेल्युलोज और सेल्युलोज से जुड़ा हेमीसेल्युलोज कम पाचनशील होता है ।

प्रोटीन

यह नत्रजन, कार्बन, हाइड्रोजन एवं आक्सीजन के मिलने से बनते हैं प्रोटीन बहुत से अमीनों अम्ल के मिलने से बनते हैं ।

कार्य- पशु शरीर में मांस बनाना, शरीर वृद्धि, रोगों के विरूद्ध प्रतिकारक शक्ति, प्रजनन शक्ति, एंजाइम एवं हार्मोन्स की सामान्य क्रिया एवं दुग्ध उत्पादन में बढ़ोत्तरी करना।

स्रोत- दो दाल वाली फसलें जैसेः बरसीम, लूसर्न, लोबिया, ग्वार, सोयाबीन, खली आदि।

वसा- वसा पानी में अघुलनशील तथा इथर, अल्कोहल, कार्बन डाई सल्फाइड में घुलनशील होती है । इससे कार्बन, हाइड्रोजन एवं आक्सीजन तत्व पशु को प्राप्त होते हैं ।

कार्य- ऊर्जा निर्माण, जोंड़ों का हलचल, त्वचा चमकना, शक्ति प्रदान करना।

स्रोत- सभी प्रकार की खली, बिनौले, सोयाबीन, आदि।

खनिज लवण

जो तत्व शरीर में ज्यादा इस्तेमाल होते हैं, वृहद खनिज तत्व तथा जिन तत्वों की पशु शरीर में आवश्यकता कम होती है विरल तत्व होते हैं । वृहद तत्व जैसेः कैल्सियम, फास्फोरस, सोडियम, पोटैशियम, मैग्निशियम, सल्फर तथा क्लोरीन । विरल तत्व जैसेः आयोडीन, मैगनीज, तांबा, कोबाल्ट, जस्ता, सैलिनियम, मोलिब्डेनम, क्रोमियम आदि।

कार्य- हड्डी मजबूत बनाना, रोग प्रतिरोधक क्षमता, भोजन पचाने में, रक्त को आक्सीजन पहुँचाना, शरीर क्रियाओं में संतुलन रखना।

स्रोत- हरा चारा, खनिज मिश्रण, खलियां इत्यादि।

विटामिन - विटामिन ए. डी. ई तथा के. वसा में घुलनशील होते हैं तथा विटामिन बी. एवं सी. पानी में घुलनशील होती हैं। विटामिन की कमी से बिमारियों के लक्षण पशु में पाये जाते हैं।

कार्य- शरीर की सामान्य वृद्धि, पशु को स्वस्थ रखना, पाचन षक्ति एवं भूख में वृद्धि करना, प्रजनन क्षमता बनाये रखना, रोग रोधक शक्ति पैदा करना।

स्रोत- हरा चारा, दाना, खलिया आदि।

पानी

पशु शरीर में लगभग **75** प्रतिशत पानी होता है, एक सामान्य पशु के लिये **35-40** लीटर पानी की आवश्यकता होती है।

कार्य- दूध बनाना, पोषक तत्वों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाना, रक्त निर्माण, शरीर का तापक्रम, पाचन शक्ति बढ़ाना।

स्रोत- हरा चारा एवं स्वच्छ पानी।

अतः पशुओं को स्वस्थ रखने के लिये सम्पूर्ण तत्वों युक्त भोजन एक निश्चित अनुपात एवं मात्रा में खिलायें। विभिन्न प्रकार के पशुओं के लिये अलग-अलग प्रकार का पशु आहार देना चाहिये।

पशु आहार

पशु आहर का वर्गीकरण इनमें पाये जाने वाले तत्वों के आधार पर निम्न प्रकार से किया जाता है।

आहर/खाद्य पदार्थ

संतुलित पशु आहार न केवल पशु की जरूरतों को पूरा करता है, बल्कि यह दुग्ध उत्पादन की लागत को भी कम करता है। दूध देने वाले पशुओं को पोषण की जरूरत तीन कारकों के लिये होती हैः

1. शरीर की यथा स्थिति को बनाये रखने के लिये।
2. दुग्ध उत्पादन की आवश्यकता को पूरा करने के लिये।
3. गर्भावस्था के लिये।

अतः पशुओं का आहार इन तीन जरूरतों को ध्यान में रखकर बनाना चाहिये, जिससे पशु स्वस्थ रहे, अधिक उत्पादन दे तथा अगली पीढ़ी के लिये स्वस्थ बच्चे को जन्म दे सके।

रेशेदार चारा		दाना मिश्रण	
सूखा चारा	हरा चारा	शाकीपूरक	प्रत्याभीन पूरक
भूसा, कड़वी	हरे चारे	दानें, खली	वनस्पति उत्पन्न
सूखी घास	साइलेज	मूल जड़ें	जैविक स्रोत
ळे	चारागाह	दाना/दाल छिलका	समुद्री स्रोत

थम्ब नियम

1. गाय को **2.5** किग्रा दुग्ध उत्पादन पर **1** किग्रा दाना।

2. भैंसों को 2 किग्रा दुग्ध उत्पादन पर 1 किग्रा दाना।

पशुओं का आहार व दाना मिश्रण तैयार करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये।

1. सबसे पहले पशु की अवस्था के आधार पर शुष्क पदार्थ, प्रोटीन, व कुल पाच्य तत्वों का निर्धारण करें।

2. इसके बाद शुष्क पदार्थ के आधार पर विभिन्न आहारिक पदार्थ जैसे दाना, हरा चारा, सूखा चारा, आदि की मात्रा निर्धारित करें।

3. जो मात्रा शुष्क पदार्थ के आधार पर आये उससे यह देख लें कि प्रोटीन, कुल पाच्य पदार्थ कितने मिल रहे हैं।

4. आहार में तत्वों की मात्रा व पशु की कुल आवश्यकता देखकर निर्धारित करें।

5. यदि किसी तत्व की मात्रा कम हो तो उसकी पूर्ति करने के लिये सबसे सस्ते आहार का इस्तेमाल करें यदि किसी तत्व की मात्रा ज्यादा हो तो उसे सबसे मंहगे आहार की मात्रा कम करें।

गाय एवं भैंसों के पाचन तंत्र के सामान्य रूप से काम करने के लिये चारे की न्यूनतम मात्रा आवश्यक है। हमारे देश में पशुओं चारे की अधिक मात्रा खिलानी चाहिये जिससे रातिब, दाना की मात्रा कम खिलानी पड़े। उत्तम चारे जैसे बरसीम, लूसर्न, मक्का आदि भरपेट देने से दाना मिश्रण की मात्रा कम की जा सकती है। कुल बरसीम या उसके साथ 1-2 किलो भूसा खिलाने से 8-10 लीटर दूध का उत्पादन प्रतिदिन ले सकते हैं।

दाना मिश्रण तैयार करना

दाना मिश्रण तैयार करते समय इन बातों का ध्यान रखें कि तैयार दाना मिश्रण में प्रोटीन 14-16 प्रतिशत तथा कुल पाच्य तत्व कम से कम 65-68 प्रतिशत हो, अतः निम्न अनुपात में ही दाना मिश्रण बनायें।

क्र. सं.	अवयव	मात्रा प्रतिशत
1	खली	25-35
2	मोटे अनाज	25-35
3	चोकर, चुन्नी, भूसी	10-30
4	खनिज लवण	2
5	नमक	1

दूध देने वाले पशुओं को कौन-कौन से चारे एवं दाने देने चाहिये और कौन से नहीं देने चाहिये वह निम्नलिखित है।

दूध देने वाले पशुओं को खिलाने योग्य चारे

1. **लूसर्न और बरसीम-** ये दोनो तरह के चारे स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी हैं। इसमें प्रोटीन की मात्रा 15-20 प्रतिशत होती है।

2. दूब, हलीम, और झरूआ आदि अन्य प्रकार की घासें अच्छी होती हैं। इनमें दूब सर्वश्रेष्ठ है।

झरूआ भी एक अच्छी और दानेदार घास है।

3. जौ तथा जई की चरी- ये पौधे दुग्ध वर्धक हैं। जौ का भूसा सूखा भी खिलाया जा सकता है। किन्तु जई का भूसा कम अच्छा होता है।

4. ज्वार की चरी- यह चारों में सर्वोत्तम है, क्योंकि इसे हरी, सूखी या साइलेज रूप में सभी तरह से खिलाते हैं। परन्तु हरी चरी ही उत्तम चारा माना जाता है।

5. मक्का- गर्मी के दिनों में साइलेज के अतिरिक्त यही एक हरे चारे के रूप में उपलब्ध हो सकती है जिसे पानी व बीज का प्रबन्ध करके चैत महीने में बोवाई कर दें और ज्येष्ठ से भाद्र पद तक ग्वार और लोबिया के पौधों के साथ मिलाकर खिलायें।

6. ग्वार और लोबिया- चैत से भादों तक इसे बोयें और मक्के की चरी के साथ खिलायें।

7. सरसों की चरी- हरी नरम सिंगरीदार सरसों को दूसरे चारों के साथ मिलाकर खिलाने पर दूध की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है एवं गर्म तासीर होती है।

8. मटर- नर्म फलियों के भर आने पर इसे खिलायें। इसमें कार्बोहाइड्रेट प्रचुर मात्रा में होता है। इसे जौ आदि के चारे भूसे के साथ मिलाकर खिलाना अच्छा रहता है।

9. चना और मसूर- चने के पौधे में क्षार की बहुत अधिकता होने के कारण इसे दूसरे चारों के साथ मिलाकर ही खिलाना चाहिये।

10. उर्द और मूँग- इसे भादों से कार्तिक माह के बीच बोना चाहिये और नरम फल लग जाने के बाद अन्य चारों के साथ मिलाकर खिलायें। क्योंकि इसमें प्रोटीन की मात्रा बहुत अधिक होती है जो दूध की पौष्टिकता को बढ़ाता है।

दूध देने वाले पशुओं को खिलाने योग्य दाने

1. गेहूँ का दलिया और चोकर बहुत ही उपयोगी होता है।
2. **खलीः** सरसों और लाही, तिल, मूँगफली, अलसी तथा बिनौले आदि की खली को खिलाने से दूध की मात्रा एवं पौष्टिकता में वृद्धि होती है।
3. चने का दाना और चुनी मिली हुई भूसी, अरहर की चुन्नी भूसी, मूँग की चूनी भूसी, मसूर की चूनी भूसी इन सभी को मिलाकर खिलाना चाहिये क्योंकि इन सभी में प्रोटीन प्रधान तत्व अत्यधिक होते हैं और भूसी में फास्फोरस का काफी अंष होता है जो दूध की उत्पादन क्षमता बढ़ाने में सहायक होता है।
4. जौ का दलिया खिलाना अत्यन्त लाभकारी माना जाता है।
5. पकाई हुई चीजें जैसे- दाल का पानी, चावल का माड़ रोटी और थेड़ा सा दलिया भी दिया जाना चाहिए।
6. गुड़ और शीरा थोड़ी मात्रा में खिलाना हितकर होता है।
7. कुछ मात्रा में ग्वार को दरकर और उबालकर या भिगोकर देना चाहिए।

दुधारू पशुओं में पोषण का महत्व

डा. एल. सी. वर्मा
वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, सिद्धार्थनगर

परिचय

भारत का दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान है, ये उत्पादक्ता के कारण नहीं बल्कि पशु संख्या अधिक होने के कारण है । देश में हर साल लगभग 50 से 60 मिलियन टन दूध का उत्पादन होता है और वर्तमान में वैश्विक दूध उत्पादन का लगभग 9.5 प्रतिशत योगदान देता है । भारत दुनिया में दूध का सबसे बड़ा उपभोक्ता भी है । दूध संग्रह, परिवहन, प्रसंस्करण और वितरण की एकीकृत सहकारी प्रणाली देश में दूध के बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए जिम्मेदार है । 2016-2017 में, भारत ने 1,65,404 हजार टन दूध का उत्पादन किया। देश की सबसे ज्यादा भैंसों की आबादी उत्तर प्रदेश में है और दूसरी सबसे ज्यादा पशुधन आबादी भी वहीं है । राज्य में अधिकांश ग्रामीण आबादी पशुधन और डेयरी में लगी हुई है । 2016-2017 में उत्तर प्रदेश ने 27770 हजार टन **दूध** का **उत्पादन** किया। इसके बावजूद दुग्ध उत्पादन की वृद्धि दर 3.5-4.5 प्रतिशत के करीब है । लेकिन फिर भी अन्य देशों के अपेक्षाकृत कम है । दुग्ध उत्पादन में वृद्धि के लिए जो अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू है, वो है दुधारू पशुओं का आहार। पशुओं को नियंत्रित रूप में सर्वोत्तम आहार एवं चारा खिलाना चाहिए । जहाँ तक संभव हो स्वयं की उपलब्ध जमीन पर उगाया हुआ एवं सही समय पर काटा हुआ चारा दिया जाना चाहिए ।

खुराक

पशुओं द्वारा भूख को शांत करने के लिए एक समय में जो भोजन खाया जाता है उसे खुराक कहते हैं ।

आहार

भोजन की वह आवश्यक मात्रा जिसे पशु 24 घंटे के दौरान खाते हैं, आहार कहलाती है ।

संतुलित पशु आहार

ऐसा आहार जो पशु को आवश्यक पोषक तत्वों प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, खनिज, लवण विटामिनुद्ध का उचित अनुपात एवं मात्रा में प्रदान करें, जिससे कि पशु की एक दिन की बढ़वार, स्वास्थ्य, दुग्ध उत्पादन, प्रजनन आदि बनाये रखें, संतुलित पशु आहार कहलाता है ।

पशु का शरीर 75% जल, 20% प्रोटीन, 5% खनिज पदार्थों एवं 1% से भी कम कार्बोहैड्रेड का बना होता है । शरीर की संरचना पर आयु व पोषण का बहुत प्रभाव होता है, बढ़ती उम्र के साथ जल की

मात्रा में कमी परन्तु वसा में वृद्धि होती है। पशुओं को संतुलित आहार खिलाने से पशु उत्पादन क्षमता में 30-35% तक की वृद्धि होती है।

पशु आहार के आवश्यक तत्व

कार्बोहाईडेट	प्रोटीन	वसा	खनिज लवण	विटामिन	पानी
घुलनशील	शुद्ध प्रोटीन		वृहत तत्व	वसा युक्त	
शर्करा, मोर्ड	अप्रोटीन		बिरल युक्त	जल युक्त	
हेमीस्ल्युलोज					
सेल्युलोज					

कार्बोहाईडेट

ये हाड्रोजन और ऑक्सीजन से मिलकर बनते हैं। कार्बोहाइड्रेट दो तरह के होते हैं। इसमें शर्करा, मॉड, हेमीसेल्युलोज ज्यादा पाचनशील तथा सेल्युलोज और सेल्युलोज से जुड़ा हैमिसेल्युलोज कम पाचनशील होता है।

प्रोटीन

यह नत्रजन, कार्बन, हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन के मिलने से बनते हैं। प्रोटीन बहुत से अमीनों अम्ल एक मिलने से बनते हैं।

कार्य - पशु शरीर में मोस बनाना, शरीर वृद्धि रोगों के विरुद्ध प्रतिकारक शक्ति, प्रजनन शक्ति, एंजाइम एंव हारमोंस की समान्य क्रिया एवं दुग्ध उत्पादन

स्रोत - दो दाल वाली फसलें जैसे: बरसीम, लुर्सन, लोबिया ग्वार, सोयाबीन, खली आदि

वसा

वसा पानी में अघुलनशील तथा इथर, एल्कोहल, कार्बनडाई सल्फाइड में घुलनशील होती है। इससे कार्बन हैड्रोजन एवं ऑक्सीजन तत्व पशु को प्राप्त होते हैं।

कार्य - उर्जा निर्माण, जोड़ों की हलचल त्वचा चमकाना, शक्ति प्रदान करना।

स्रोत - सभी प्रकार की खली, बिनौले, सोयाबीन आदि।

खनिज लवण

जो तत्व शरीर में ज्यादा इस्तेमाल होते है, वृहत खनिज तत्व तथा जिन तत्वों की पशु शरीर में आवश्कता कम होती है विरल तत्व होते हैं। जैसे: लोहा कैल्शियम, फास्फोरस, सोडियम पोटाशियम, मैग्नीशियम, सल्फर तथा क्लोरिन

जैसे - लोहा आयोडीन, मैगनीज, बॉबा, कोबाल्ट, जस्ता, सैलिनियम, मोलिब्डेनम, क्रोमियम आदि।

कार्य - हड्डी मजबूत बनाना, रोग प्रतिरोधक क्षमता, भोजन पचाने में, रक्त को ऑक्सीजन पहुंचाना,

शरीर क्रियाओं में संतुलन रखना।

स्रोत - हरा चारा, खल, खनिज मिश्रण

विटामिन

विटामिन ए.डी. तथा ई ये वसा में घुलनशील होते हैं तथा विटामिन बी एवं सी पानी में घुलनशील होते हैं। विटामिन की कमी से बीमारियों के लक्षण पशु में जाते हैं।

कार्य - शरीर की सामान्य वृद्धि, पशु को स्वास्थ्य रखना, पाचन शक्ति एवं भूख में वृद्धि रकना, प्रजनन क्षमता बनाये रखना, रोग रोधक शक्ति पैदा करना।

स्रोत - हरा चारा, दाना, खलियाँ इत्यादि।

पानी

पशु शरीर में लगभग 75% पानी होता है, एक सामान्य पशु के लिए 35-40 लीटर पानी की आवश्यकता होती है।

कार्य - दूध बनाना, पोषक तत्वों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाना, रक्त निर्माण, शरीर का तापक्रम, पाचन शक्ति बढ़ाना।

स्रोत - हरा चारा एवं स्वच्छ पानी

अतः पशुओं को स्वास्थ्य रखें के लिए सम्पूर्ण तत्वों युक्त भोजन एक निशिचत अनुपात एवं मात्रा में खिलाएं। विभिन्न प्रकार के पशुओं के लिए अलग-अलग प्रकार का आहार देना चाहिए।

पशु आहार

पशु आहार का वर्गीकरण उनमें पाए जाने वाले तत्वों के आधार पर निम्न प्रकार से किया जाता है।

आहार/खाद्य पदार्थ

संतुलित पशु आहार न केवल पशु की जरूरतों को पूरा करता है, बल्कि यह दुग्ध उत्पादन की लागत को भी कम करता है। दूध देने वाले पशुओं को पोषण कि जरूरत तीन कारकों के लिए होती है:

1. शरीर की यथा स्थिति को बनाये रखने के लिए
2. दुग्ध उत्पादन की आवश्यकता को पूरी करने के लिए
3. गर्भावस्था के लिए

अतः पशु का आहार इन तीन जरूरतों को ध्यान में रखकर बनाना चाहिए, जिससे पशु स्वस्थ्य रहे, अधिक उत्पादन दे तथा अगली पीढ़ी के लिए स्वस्थ्य बच्चे को जन्म दे।

रेशेदार चारा		दाना मिश्रण	
सुखा	हरा	शाकीपूरक	प्रत्याभीन पूरक
भूसा, कड़वी	हरे चारे	दाने, खली	वनस्पति उत्पन्न
सखी घास	साइलेज	मूल जड़े	जैविक स्रोत
हे	चारागाह	दाना/दाल छिलका	समुद्री स्रोत

थम्ब नियम

1. गाय के 2.5 किलोग्राम दुग्ध उत्पादन रप 1 किग्रा, दाना
2. भैसों के 2 किलोग्राम दुग्ध उत्पादन किलोग्राम दुग्ध उत्पादन पर 1 किग्रा, दाना।

पशुओं का आहार व दाना मिश्रण तैयार करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखते हैं

1. सबसे पहले पशु की अवस्था के आधार पर शुष्क पदार्थ, प्रोटीन व कुल पाच्य तत्वों का निर्धारण करें।
2. उसके बाद शुष्क पदार्थ के आधार पर विभिन्न आहारिक पदार्थ जैसे दाना, हरा चारा, सुखा चारा, आदि की मात्रा निर्धारित करें।
3. जो मात्रा शुष्क पदार्थ के आधार पर आये उससे यह देखें कि प्रोटीन, कुल पाच्य पदार्थ कितने मिल रहे हैं।
4. आहारों में तत्वों की मात्रा व पशु की जुल आवश्कता देखकर निर्धारित करें।
5. अगर किसी तत्व की मात्रा कम हो तो उसकी पूरी करने के लिए सबसे सस्ते आहार का इस्तेमाल करे यदि किसी तत्व की मात्रा ज्यादा हो तो उसे सबसे महंगे आहार की मात्रा कम करें।

गाय एवं भैसों के पाचन तंत्र के सामान्य रूप से काम करने के लिए चारे की न्यूनतम मात्रा आवश्यक है। हमारे देश में चारे की अधिक मात्रा खिलानी चाहिए जिससे राबित, दाना मिश्रणद्ध की कम मात्रा खिलानी पड़े। उत्तम चारे जैसे बरसीम, लुर्सन, मक्का आदि भरपेट देने से दाना मिश्रण की मात्रा कम की जा सकती है। कल बरसीम या उसके साथ 1-2 किलो भूसा खिलाने से 8-10 लीटर दूध का उत्पादन प्रतिदिन ले सकते हैं।

दाना मिश्रण बनाते समय यह ध्यान रखें कि तैयार दाना मिश्रण में प्रोटीन 14-16% तथा कुल पाच्य तत्व कम से कम 65-68% हो अतः निम्न अनुपात में ही दाना मिश्रण बनाएं।

दाना मिश्रण तैयार करना

क्र. सं.	अवयव	मात्रा प्रतिशत
1	खली	25-35%
2	मोटे अनाज	25-35%
3	चोकर, चुन्नी, भूसी	10-30%
4	खनिज लवण	2%
5	साधारण नमक	1%

दूध देनेवाले पशुओं को कौन-कौन से चारे एवं दाने देने चाहिए और कौन से नहीं वो निम्नलिखित है:

दूध देने वाले पशुओं को खिलाने-योग्य चारे

1. लूसर्न और बरसीम -ये दोनों तरह के चारे स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी है । इनमें प्रोटीन की मात्रा 15-20 प्रतिशत होती है ।
2. दुब, हलीम और झरूआ आदि अन्य प्रकार की घासे अच्छी होती हैं । इनमें दूब सर्वश्रेष्ठ है । झरूआ भी एक अच्छी और दानेदार घास है ।
3. जौ तथा जई की चरी - ये पौधे दुग्धवर्धक हैं । जौ का तो सूखा भूसा भी खिलाया जा सकता है, किंतु जई का भूसा कम अच्छा होता हैं ।
4. ज्वार की चरी - यह चारों में सर्वोत्तम हैं, क्योंकि इसे हरी, सूखीं या साइलेज-रूप में सभी तरह से खिलाते हैं । परन्तु हरी चरी ही उत्तम चारा माना जाता है ।
5. मक्का- गर्मी के दिनों में साइलेज के अतिरिक्त यही। एक हरे चारा के रूप में उपलब्ध हो सकती है जिसे पानी व का प्रबंध करके चैत्र माह में बो दें और ज्येष्ठ से भाद्र पद तक ग्वार और लौबिया के पौधों के साथ मिलाकर खिलाये।
6. ग्वार और लोबिया - चैत से भादो माह तक इसे बोये और मक्के की चरी के साथ खिलाये।
7. सरसों की चरी- हरी नरम और सिंगरीदार सरसों को । दूसरे चारों के साथ मिलाकर खिलाने पर दूध की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती हैं एवं गर्म-तासीर होती है ।
8. मटर - नर्म फलियों के भर आने पर इसे खिलाये। इसमें कार्बोहाइड्रेट बहुत होते हैं, एवं इसे जौ आदि के चारे या भूसे के साथ में मिलाकर ही खिलाना चाहिये।
9. चना और मसूर - चने के पौधे में क्षार की बहुत अधिकता होने के कारण इसे दूसरे चारों के साथ मिलाकर ही खिलाना चाहिये।
10. उरद तथा मूंग - इसे भादो से कार्तिक माह के बीच बोना चाहिए और नरम फल लग जाने के बाद

अन्य चारों के साथ मिलाकर खिलाये। क्योंकि इसमें प्रोटीन की मात्रा बहुत अधिक होती है जो की दूध की पौष्टिकता को बढ़ाता है।

दूध देने वाले पशुओं को खिलाने योग्य दाने

1. गेहूं का दलिया और चोकर बहुत ही उपयोगी हेता है।
2. **खली:** सरसों और लाही, तिल, मूंगफली, अलसी तथा बिनौले आदि को खिलाने से दूध की मात्रा एवं पौष्टिकता में वृद्धि होती है।
3. चने का दाना और चूनी मिली हुई भूसी, अरहर की चुनी भूसी, मूंग की चुनी भूसी, मसूर की चूनी भूसी इन सभी को मिलाकर खिलाना चाहिये क्योंकि इन सभी में प्रोटीन प्रधान तत्व अत्यधिक होते हैं और भूसी में फासफोरस का काफी अंश होता है जो दूध की उत्पादन, क्षमता बढ़ाने में सहायक होता है।
4. जौ का दलिया खिलाना अत्यन्त लाभकारी माना जाता है।
5. गुड़ और शीरा थोड़ी मात्रा में खिलाना हितकर होता है।
6. पकाई हुई चीजें जैसे-दाल का पानी, चावल का माँड़, रोटी और थोड़ा-सा दलिया भी दिया जाना चाहिये।

कुछ मात्रा में ग्वार को दलकर और उबालकर या भिगोकर देना चाहिये।

पशुओं पर गर्मी के मौसम का प्रभाव

श्री कान्त
अतिथि व्याख्याता, पशुधन उत्पादन एवं प्रबन्धन
म0 गाँ0 चि0 ग्रा0 वि0 वि0 चित्रकूट, सतना (म0प्र0)

अगले कुछ दिनों में गर्मियों का सीजन प्रारम्भ होने वाला है, इसका असर मानव के साथ-साथ पशुओं पर भी पड़ता है। गर्मी के कारण पशुओं में जहाँ बिमारी की चपेट में आने का खतरा बढ़ जायेगा, वही दुधारू पशुओं की उत्पादन क्षमता पर भी असर पडेगा। गर्मियों के दिनों में तापमान लगभग 40-420 सेल्सियस के आस-पास पहुँच जाता है, ऐसे में पशु पालको को अपने पशुओं पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, यदि बढ़ती गर्मी में पशुओं की देखभाल सही से न की जाए तो पशुओं के बीमार होने की सम्भावना बढ़ जाती है तथा दुग्ध उत्पादन में भी कमी आ जाती है।

गर्मियों के मौसम में पशुओं में होने वाले प्रमुख रोगों में लू लगना व हाॅफने की बिमारी है, इसके अलावा पशु चेचक, कंठा, लंगडी आदि रोगों की चपेट में भी आ सकते है।

लू लगने से पशु को तेज बुखार हो जाता है तथा पशु सुस्त होकर खाना पीना बंद कर देता है, पशु के सांस व नाडी गति धीमी सामान्य से अधिक हो जाती है तथा पशु बेहोश हो जाता है व उचित उपचार न मिलने से पशु की मृृत्यु भी हो सकती है।

गर्मी के मौसम में पशुओं में होने वाली बिमारियों से बचाने के लिए उन्हें दिन में दो से तीन बार नहलाना चाहिए, इन्हें छायादार स्थान पर बाँधना चाहिए, पशुशाला अगर पक्की है तो उसकी छत पर कबाड व सूखी घास रखे जिससे छत ठंडी रहे सूखे चारे की अपेक्षा हरे चारे का अधिक प्रयोग करें।

प्राकृतिक खेती - आधुनिक कृषि का एक गेम चेंजर

यश कुमार सिंह[1], प्रज्ञा श्रीवास्तव[2], अभिनव सिंह[3]

[1]यंग प्रोफेशनल - II , महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र, [2] गेस्ट टीचर कालेज आफ हार्टिकल्चर संकरा, पाटन दुर्ग, छत्तीसगढ़, [3]पी.एच.डी. स्कालर नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय अयोध्या

प्राकृतिक खेती एक रासायन मुक्त उर्फ पारंपरिक कृषि पद्धति है । इसे कृषि पारिस्थितिकी आधारित विविध कृषि प्रणाली के रूप में माना जाता है जो कार्यात्मक जैव विविधता के साथ फसलों, पेड़ों और पशुधन को एकीकृत करती है । यह कृषि पद्धति की एक प्रणाली है जो प्रकृति की प्रणाली का अनुकरण करती है । इसे 'कुछ न करें खेती' या 'नो-टिल खेती' भी कहा जाता है ।

प्राकृतिक खेती का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि प्रकृति को यथासंभव अधिक से अधिक प्रभावी भूमिका निभाने दिया जाए । इसलिए, खेती की इस प्रक्रिया में नो-टिल, फार्म जैव विविधता, एकीकरण और सहजीवी फार्म घटक और मिट्टी के आवरण की सुरक्षा सभी का स्थान है ।

भारत में, प्राकृतिक खेती को केंद्र प्रायोजित योजना- परम्परागत कृषि विकास योजना (PKVY) के तहत भारतीय प्राकृतिक कृषि पद्धति कार्यक्रम (BPKP) के रूप में बढ़ावा दिया जाता है । बीपीकेपी का उद्देश्य पारंपरिक स्वदेशी प्रथाओं को बढ़ावा देना है जो कृषि इनपुट को कम करता है । किसानों को कम लागत और अधिक फायदा के लिए की जा रही रासायनिक खेती के बाद अब जैविक खेती दिखाई दे रही है । किन्तु जैविक खेती से ज्यादा सस्ती, सरल एवं ग्लोबल वार्मिंग (पृथ्वी के बढ़ते तापमान) का मुकाबला करने वाली खेती "जीरो बजट प्राकृतिक खेती" मानी जा रही है ।

असल में ZBNF को 1990 के दशक के मध्य में हरित क्रान्ति के विकल्प के तौर पर **पद्म श्री सुभाष पालेकर** द्वारा लाया गया था । इसे लाने के पीछे का मूल मकसद एक तरफ खेती की लागत को लगभग जीरो कर किसानो को कर्ज के बोझ से मुक्त कराना और उनकी आय को बढ़ाना था, तो दूसरी तरफ मिट्टी और जल प्रदूषण को खत्म कर सतत व पर्यावरण अनुकूल खेती करना था ।

प्राकृतिक खेती के सिद्धांत

प्राकृतिक खेती के सिद्धांत मुख्य रूप से पर्यावरण में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों और प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में सूर्य के प्रकाश, पानी, मिट्टी, पौधों, जानवरों और सूक्ष्मजीवों का उचित उपयोग करना है ।

सिद्धांत हैं-

- रासायनिक उर्वरकों का उपयोग नहीं ।
- जुताई रहित कृषि
- जुताई या शाकनाशी द्वारा कोई निराई नहीं ।

- रासायनिक कीटनाशकों पर कोई निर्भरता नहीं।

प्राकृतिक खेती में अपनाई जाने वाली विभिन्न पद्धतियां

अच्छादाना (मल्चिंग) - मल्चिंग मिट्टी की सतह पर पौधों के अवशेषों या अन्य सामग्रियों की प्राकृतिक या कृत्रिम परत लगाने की प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में इसे सुरक्षात्मक आवरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जैसे कि पौधों की छाल, पुआल या प्लास्टिक की चादरें, जो पौधों के चारों ओर जमीन पर रखी जाती हैं ताकि खरपतवार की वृद्धि को रोका जा सके, मिट्टी की नमी बनाए रखने में सहायक। यह बिना जुताई के बीज के अंकुरण में सुधार करता है। फूल आने से पहले खरपतवार की कटाई और खुली जमीन को ढकने से फसल के लिए खरपतवार का क्षेत्र कम हो जाता है और मिट्टी में जैविक सामग्री विकसित हो जाती है। इस प्रकार शाकनाशी के प्रयोग से बचा जा सकता है।

नो-टिलेज - मिट्टी की नमी को बढ़ाने के लिए पूरी तरह से जुताई से बचना जो केंचुओं के प्रसार को बढ़ाता है। केंचुए मिट्टी को भुरभुरी बनाने और मिट्टी को उपजाऊ करने के लिए जाने जाते हैं। यह प्राकृतिक खेती के महत्वपूर्ण कारकों में से एक है।

वापासा - वापासा एक ऐसी स्थिति है जहां मिट्टी में पानी के अणु और वायु के अणु मौजूद होते हैं। यह अतिरिक्त सिंचाई आवश्यकता को कम करने में मदद करता है।

बीजामृत- इससे बीजों का उपचार किया जाता है ।

बीजामृत बनाने के लिए सामग्री

पानी- 20 लीटर

गौ-मूत्र- 5 लीटर (देशी गाय)

देशी गाय का गोबर- 5 किलो (ताजा)

चुना- 50ग्राम

मिट्टी- 1मुठ्ठी (खेत के मेंड/जड़ो से लगे)

बनाने की विधि- सबसे पहले एक कंटेनर में 20 लीटर पानी ले तथा इसमें देशी गाय का 5 लीटर गौमूत्र एव 5 किलो देशी का गोबर मिला दें, इसके बाद 50 ग्राम चुना एव एक मुठ्ठी मिट्टी को मिला के इस तरह घोले की किसी भी तरह का कोई ढेला नहीं रह पाये । जब मिश्रण अच्छी तरह से मिल जाए तो कुछ देर तक एक लकड़ी से चलाते रहें फिर किसी कपडे से ढक कर एक रात छोड़ दें । अगले दिन 100 किलोग्राम बीजों को संस्कार (उपचार) कर सकतें है ।

जीवामृत - यह एक प्रकार का उत्प्रेरक एजेंट है जो मिट्टी में पोषक तत्वों को जोड़ने के साथ-साथ उसमे मौजूद सूक्ष्म जीवों और केचुओं की गतिविधि को बढ़ाने का कार्य करता है ।

जीवामृत बनाने के लिए सामग्री

गाय का मूत्र – 10 लीटर

गुड़ – 3 किलोग्राम

गाय का गोबर – 5 किलोग्राम

बेसन(किसी भी दाल से) – 2 किलोग्राम

जीवामृत की तैयारी

बनाने की विधि- सबसे पहले गाय के मूत्र को एक कंटेनर में रखें तथा इसमें गाय का गोबर 5 किलोग्राम मिला दें, गोबर को मूत्र में इस तरह से मिलायें की मूत्र के साथ घुल जाये तथा किसी भी तरह का कोई गाँठ नहीं रहे । इसके बाद 3 किलोग्राम गुड़ को किसी दूसरे बर्तन में पानी के साथ घोल लें, (गुड़ का प्रयोग इस लिए करते हैं कि तैयार मिश्रण में उपस्थित बैक्टीरिया ज्यादा सक्रिय हो जाता है) । गुड़ को भी इस तरह घोलें की किसी भी तरह का कोई ढेला नहीं रह पाये । अब घुले हुये गुड़ को गोबर युक्त मूत्र में मिला दें । इन दोनों मिश्रण को अच्छी तरह से चलायें । अब अन्त में 2 किलोग्राम बेसन को मिला दें, कुछ देर तक मिश्रण को चलाते रहें । जब मिश्रण अच्छी तरह से मिल जाए तो एक बड़े से कंटेनर में डाल दें और कुछ देर तक एक लकड़ी से चलाते रहें । इसके बाद उसमें उतना ही पानी मिला दें । इसी तरह सभी मिश्रण को 7 दिन तक छोड़ दें लेकिन सातों दिन समय – समय पर एक लकड़ी से चलाते रहें । सात दिन के बाद आप इसे एक एकड़ खेत में उपयोग कर सकते हैं ।

प्राकृतिक खेती और जैविक खेती के बीच अंतर।

लागत - जैविक खेती प्राकृतिक खेती की तुलना में अधिक महंगी पाई जाती है क्योंकि बाजार से बड़ी मात्रा में जैविक खाद खरीदना बहुत महंगा होता है।

उर्वरक- प्राकृतिक खेती में मिट्टी में न तो रासायनिक और न ही जैविक खाद डाली जाती है। वास्तव में, मिट्टी में कोई बाहरी उर्वरक नहीं डाला जाता है और न ही पौधों को दिया जाता है। प्राकृतिक खेती में, मिट्टी की सतह पर ही रोगाणुओं और केंचुओं द्वारा कार्बनिक पदार्थों के अपघटन को प्रोत्साहित किया जाता है, जो धीरे-धीरे मिट्टी में पोषण जोड़ता है।

श्रम - प्राकृतिक खेती की तुलना में जैविक खेती की श्रम आवश्यकता अधिक होती है क्योंकि इसमें जुताई और खाद की आवश्यकता होती है जबकि प्राकृतिक खेती में जुताई या उर्वरक की आवश्यकता नहीं होती है। प्राकृतिक खेती में रोगाणुओं और केंचुओं द्वारा कार्बनिक पदार्थों के अपघटन को मिट्टी की सतह पर ही प्रोत्साहित किया जाता है।

पर्यावरण प्रभाव - जैविक खेती का आसपास के पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है, जबकि प्राकृतिक खेती से पर्यावरण पर प्रभाव नहीं होता है और यह स्थानीय जैव विविधता के अनुरूप होती है।

प्राकृतिक खेती के विशेष लाभ

- सबसे पहला फायदा आर्थिक है, क्योंकि यह खेती की लगात को कम कर जीरो बजट की ओर

ले जाता है जिससे मुनाफा अधिक होता है ।

- खेती मौजूदा दौर में एक ऐसी व्यवसाय बन गई है जिसमें लागत लगातार बढती जा रही है। ऐसे में इस प्रकार की खेती किसानो के लिए वरदान है जिससे छोटे किसानो के ऋण चक्र को तोड़ा जा सकता है ।
- प्राकृतिक होने के कारण यह पर्यावरण अनुकूल है। यह न सिर्फ मिट्टी कि उर्वरता बनाये रख कर मरुस्थलीकरण को रोकेगा बल्कि रासायनिक खेती के कारण होने वाले जल और मृदा प्रदुषण को लगभग शून्य करेगा।
- कम श्रम गहन।
- प्राकृतिक खेती होने के कारण इससे समाज को स्वच्छ और स्वस्थ भोजन मुहैया होगा, इस प्रकार की खेती से भोजन में हानिकारक रासायनिक पदार्थ की मात्रा न के बराबर होती है।
- उर्वरक सब्सिडी (छूट) के भार में कमी से सरकारी राजकोष पर दबाव कम होगा।

हरी खाद: मृदा स्वास्थ्य एवं टिकाऊ खेती के लिए वरदान

श्री अवनीश कुमार सिंह, डॉ० संदीप प्रकाश उपाध्याय,
डॉ० विवेक प्रताप सिंह, डॉ० राहुल कुमार सिंह,
डॉ० अजीत कुमार श्रीवास्तव, श्रीमती श्वेता सिंह तथा यश कुमार सिंह
महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केंद्र चौकमाफी , पीपीगंज , गोरखपुर

हरी खाद, जैविक खाद के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण अवयव है। हरी खाद के उपयोग का मुख्य उद्देश्य वायुमंडलीय नाइट्रोजन को मिट्टी में स्थिर करना एवं मिट्टी में कार्बनिक पदार्थो की मात्रा को बढ़ाना है। सघन कृषि पद्धति तथा असंतुलित रासायनिक उर्वरको के प्रयोग के कारण दिन प्रति दिन मिट्टी की उर्वरता में ह्रास हो रहा है क्योकि रासायनिक उर्वरको से पौधे को अपने वृद्दि एवं विकास के लिए आवश्यक 16 पोषक तत्वों की पूर्ति नहीं हो पाती है। उर्वरकों के मूल्यों में वृद्धि तथा गोबर की खाद जैसे अन्य कार्बनिक स्त्रोतों की सीमित आपूर्ति से आज हरी खाद का महत्व और भी बढ़ गया है ।

दलहनी एवं गैर दलहनी फसलों को उनके वानस्पतिक वृद्धि काल में उपयुक्त समय पर मृदा उर्वरता एवं उतपादकता बढ़ाने के लिए जुताई करके मिट्टी में अपघटन के लिए दबाना ही हरी खाद देना है । भारतीय कृषि में दलहनी फसलों का महत्व सदैव रहा है । ये फसलें अपने जड़ ग्रन्थियों में उपस्थित सहजीवी जीवाणु द्वारा वातावरण में नाइट्रोजन का दोहन कर मिट्टी में स्थिर करती है । आश्रित पौधे के उपयोग के बाद जो नाइट्रोजन मिट्टी में शेष रह जाती है उसे आगामी फसल द्वारा उपयोग में लायी जाती है । इसके अतिरिक्त दलहनी फसलें अपने विशेष गुणों जैसे भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने प्रोटीन की प्रचुर मात्रा के कारण पोषकीय चारा उपलब्ध कराने तथा मृदा क्षरण के अवरोधक के रूप में विशेष स्थान रखती है ।

हरी खाद में प्रयुक्त दलहनी फसलों का मिट्टी से सह-संबंध

दलहनी फसलों की जड़ें गहरी तथा मजबूत होने के कारण कम उपजाऊ भूमि में भी अच्छी उगती है । भूमि को पत्तियों एवं तनों से ढक लेती है जिससे मृदा क्षरण कम होता है ।दलहनी फसलों से मिट्टी में जैविक पदार्थों की अच्छी मात्रा एकत्रित हो जाती है ।राइजोबियम जीवाणु की मौजूदगी में दलहनी फसलों की 60-150 किग्रा० नाइट्रोजन/हे० स्थिर करने की क्षमता होती है ।दलहनी फसलों से मिट्टी के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में प्रभावी परिवर्तन होता है जिससे सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता एवं आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि होती है ।

हरी खाद देने की विधियाँ :- हरी खाद को प्रयोग करने के आधार पर दो भागो में बाटा गया है-

हरी खाद की स्थानिक विधि:- जिस खेत में हरी खाद का प्रयोग करना है उसी खेत में हरी खाद की फसल को उगा कर एक निश्चित समय पश्चात फूल आने के पूर्व वानस्पतिक वृद्धि काल (40-50

दिन) में पाटा चलाकर मिटटी पलटने वाले हल से जोतकर मिट्टी में सड़ने के लिए पलट दिया जाता है।

हरी पत्तियों की हरी खाद:- हमारे देश में आमतौर पर हरी खाद के उपयोग के लिए यह विधि प्रचलित नही है परन्तु दक्षिण भारत में कुछ स्थानों पर किया जाता है। इस विधि में जंगलो या अन्य स्थानों पर पेड़ पौधों, झाड़ियो आदि की हरी पत्तियों एवं कोमल शाखाओं को तोडकर खेत में फैलाकर जुताई द्वारा मृदा में दबाया जाता है। जो मिट्टी मे थोड़ी नमी होने पर भी सड जाती है।

हरी खाद की फसल के चुनाव में आवश्यक गुण

- हरी खाद के लिए उगाई जाने वाली फसल का चुनाव भूमि जलवायु तथा उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए। हरी खाद के लिए फसलों में निम्न गुणों का होना आवश्यक है।
- फसल में वानस्पतिक भाग अधिक व तेजी से बढ़ने वाले हो।
- फसलो में वानस्पतिक भाग जैसे तना, शाखाएं और पत्तियॉ कोमल एवं बिना रेशे वाली हो ताकि मिट्टी में शीघ्र अपघटित हो जाए और अधिक से अधिक मात्रा में जीवांश तथा नाइट्रोजन मिल सके।
- फसलें मूसला जड़ों वाली हों ताकि नीचे की मिट्टी को भुरभुरी बना सके और गहराई से पोषक तत्वों का अवशोषण हो सके।
- क्षारीय एवं लवणीय मृदाओं में गहरी जड़ों वाली फसल अंतः जल निकास बढ़ाने में आवश्यक होती है।
- फसलो की जड़ो में अधिक ग्रंथियां हो ताकि वायु के नाइट्रोजन को अधिक मात्रा में भमि में स्थापित कर सके।
- फसल का उत्पादन खर्च कम हो तथा प्रतिकूल अवस्था जैसे सूखा अवरोधी के साथ जल मग्नता को भी सहन करती हों।
- रोग एवं कीट कम लगते हो तथा बीज उत्पादन को क्षमता अधिक हो। हरी खाद के साथ-साथ फसलों को अन्य उपयोग में भी लाया जा सके।

हरी खाद बनाने के लिए अनुकूल फसले

हमारे देश में आमतौर पर हरी खाद के उपयोग के लिए दलहनी फसले उगाई जाती है। हरी खाद के लिए दलहनी फसलों में सनई, ढैंचा, उर्द, मूॅग, अरहर, चना, मसूर, मटर, लोबिया, बरसीम, मोठ, खेसारी तथा कुल्थी मुख्य है। लेकिन पूर्वी उत्तर प्रदेश में जायद में हरी खाद के रूप में अधिकतर सनई, ढैंचा, उर्द एवं मूॅग का प्रयोग ही प्रायः प्रचलित है। इनमे से ढैंचा की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है।

सनई:- यह उत्तम दलहनी हरी खाद की फसल है। इसकी बुवाई मई से जुलाई तक वर्षा प्रारम्भ होने पर अथवा सिंचाई करके की जा सकती है। एक हेक्टेयर खेत में 80-90 किग्रा० बीज बोया जाता है। मिश्रण फसल में 30-40 किग्रा० बीज प्रति हे० पर्याप्त होता है। यह तेज वृद्धि तथा मूसल जड़ वाली फसल है जो खरपतवार को दबाने में समर्थ है। बुवाई के 40-50 दिन बाद इसको खेत में पलट देते है। सनई की फसल से 20-30 टन हरा पदार्थ एवं 85-125 किग्रा० नाइट्रोजन प्रति हे० मृदा को प्राप्त होता हैI नरेन्द्र सनई-1 उपयुक्त प्रजाति है। बीज की उपलब्धता सुनिश्चित न होने पर सनई की अन्य स्थानीय प्रजातियों का भी प्रयोग हरी खाद के रूप में किया जा सकता है।

ढैंचा:- यह एक दलहनी फसल है। यह सभी प्रकार की जलवायु तथा मृदा दशाओं में सफलतापूर्वक उग जाती है। जलमग्न दशाओं में भी यह 1.5 से 1.8 मीटर की ऊँचाई कम समय में ही पा लेती है। यह फसल एक सप्ताह तक 60 सेमी० तक पानी भरा रहना भी सहन कर लेती है। इन दशाओं में ढैंचा के तने से पार्श्व जड़ें निकल आती है जो उसे तेज हवा चलने पर भी गिरने नहीं देती। अंकुरण होने के बाद यह सूखे को सहने करने की क्षमता रखती है। इसे क्षारीय तथा लवणीय मृदाओं में भी उगाया जा सकता है। हरी खाद के लिए प्रति हे०55-60 किग्रा० ढैंचे के बीज की आवश्यकता होती है। ऊसर में ढैंचे से 45 दिन में 20-25 टन हरा पदार्थ तथा 85-105 किग्रा० नाइट्रोजन मृदा को प्राप्त होता है। धान की रोपाई के पूर्व ढ़ैचा की पलटाई से खरपतवार नष्ट हो जाते है। नरेन्द्र ढ़ैचा-1, पंत ढैंचा-1, हिसार ढैंचा-1 उपयुक्त प्रजाति है। इन प्रजातियों के बीज की उपलब्धता सुनिश्चित न होने पर ढैंचा की अन्य स्थानीय प्रजातियों का भी प्रयोग हरी खाद के रूप में किया जा सकता है।

ग्वार:- यह खरीफ में बोयी जाने वाली दलहनी तथा मूसला जड़ वाली फसल है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों तथा बलुई भूमि में यह सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। इसका 20-25 किग्रा० बीज/हे० बोकर 20-25 टन हरा पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है।

उर्द एवं मूंग:- इन फसलों को अच्छी जल निकास वाली हल्की बलुई या दोमट मृदाओं में जायद एवं खरीफ में बोया जा सकता है। इन फलियों को तोड़ने के बाद खेत में हरी खाद के रूप में पलट कर उपयोग में लाया जा सकता है। उत्तर प्रदेश में हरी खाद के लिए इनका आंशिक रूप में प्रयोग किया जा सकता है। बुवाई के लिए प्रति हे० 20-22 किग्रा० मूँग/उर्द बीज की आवश्यकता होती है। मूंग एवं उर्द से 10-12 टन प्रति हैक्टेयर हरा पदार्थ प्राप्त होता है।

लोबिया:- इस दलहनी फसल को सिंचित क्षेत्रों में आंशिक रूप से हरी खाद के रूप में उगाया जा सकता है। यह बहुत मुलायम होती है जिसे अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट मृदाओं में उगाया जाता है। जल भराव को यह फसल सहन नहीं कर पाती है। एक हेक्टेयर में 25-35 किग्रा० बीज की बुवाई करके 15-18 टन हरा पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है।

उर्वरक प्रबन्ध

हरी खाद के लिए प्रयोग की जाने वाली दलहनी फसलों में भूमि में सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता बढ़ाने के लिए विशिष्ट राइजोबियम कल्चर का टीका लगाना उपयोगी होता है। कम एवं सामान्य उर्वरता वाले मिट्टी में 10-15 किग्रा० नाइट्रोजन तथा 40-50 किग्रा० फास्फोरस प्रति हे० उर्वरक के रूप में देने से ये फसलें पारिस्थिकीय संतुलन बनाये रखने में अत्यन्त सहायक होती है।

हरी खाद की फसलों की उत्पादन क्षमता

हरी खाद की विभिन्न फसलों की उत्पादन क्षमता जलवायु, फसल वृद्धि तथा कृषि क्रियाओं पर निर्भर करती है। विभिन्न हरी खाद वाली फसलों की उत्पादन क्षमता निम्न सारणी में दी गयी है।

फसल	हरे पदार्थ की मात्रा (टन प्रति हे.)	नाइट्रोजन का प्रतिशत	प्राप्त नाइट्रोजन (किग्रा.प्रति हे.)
सनई	20-30	0.43	86-129
ढैंचा	20-25	0.42	84-105
उर्द	10-12	0.41	41-49
मूंग	8-10	0.48	38-48
ग्वार	20-25	0.34	68-85
लोबिया	15-18	0.49	74-88

हरी खाद की गुणवत्ता बढाने के उपाय

1. **उपयुक्त फसल का चुनाव:-** जलवायु एवं मृदा दशाओं के आधार पर उपयुक्त फसल का चुनाव करना आवश्यक होता है। जलमग्न तथा क्षारीय एवं लवणीय मृदा में ढैंचा तथा सामान्य मृदाओं में सनई एवं ढैंचा दोनों फसलों से अच्छी गुणवत्ता वाली हरी खाद प्राप्त होती है। मूँग, उर्द, लोबिया आदि अन्य फसलों से अपेक्षित हरा पदार्थ नहीं प्राप्त होता है।
2. **हरी खाद की खेत में पलटायी का समय: -** अधिकतम हरा पदार्थ प्राप्त करने के लिए फसलों की पलटायी या जुताई, बुवाई के 6-8 सप्ताह बाद प्राप्त होती है। आयु बढ़ने से पौधों की शाखाओं में रेशे की मात्रा बढ़ जाती है जिससे जैव पदार्थ के अपघटन में अधिक समय लगता है।
3. **हरी खाद के प्रयोग के बाद अगली फसल की बुवाई या रोपाई का समय:-** जिन क्षेत्रों में धान की खेती होती है वहाँ जलवायु नम तथा तापमान अधिक होने से अपघटन क्रिया तेज होती है। अतः खेत में हरी खाद की फसल के पलटायी के तुरन्त बाद धान की रोपाई की जा सकती है। लेकिन इसके लिए फसल की आयु 40-45 दिन से अधिक की नहीं होनी चाहिए। लवणीय एवं क्षारीय

मृदाओं में ढैंचे की 45 दिन की अवस्था में पलटायी करने के बाद धान की रोपाई तुरन्त करने से अधिकतम उपज प्राप्त होती है।

4. **समुचित उर्वरक प्रबन्ध:-** हरी खाद की फसल में उर्वरको की आवश्यकता बहुत कम मात्रा में होती है। इसमें प्राग की जाने वाली दलहनी फसलों में भूमि में सुक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता बढाने के लिए राजोबियम कल्चर द्वारा टीकाकरण करने से नाइट्रोजन स्थिरीकरण सहजीवी जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। कम एवं सामान्य उर्वरता वाली मृदाओं में नाइट्रोजनधारी उर्वरकों का 15-20 किग्रा०/हे० तथा 40-50 किग्रा० फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर के रूप में देने से ये फसले पारिस्थितिकीय संतुलन बनाये रखने में अधिक सहायक होती है का प्रयोग उपयोगी होता है।

हरी खाद बनाने के लाभ

- हरी खाद केवल नाइट्रोजन और कार्बनिक पदार्थो की ही आपूर्ति नही करती है बल्कि इससे भूमि को कई पोषक तत्व भी प्राप्त होते है। इसे प्राप्त होने वाले पदार्थ इस प्रकार है नाइट्रोजन, गंधक, स्फुर, पोटाश, मैग्नीशियम, कैल्शियम, तांबा, लोहा और जस्ता इत्यादि।
- इसके उपयोग से भूमि में सूक्ष्मजीवों की संख्या और क्रियाशीलता बढ़ती है, तथा मिट्टी की उर्वरा शक्ति व उत्पादन क्षमता में भी बढ़ोतरी देखने को मिलती है।
- हरी खाद के प्रयोग से मिट्टी नरम होती है, हवा का संचार होता है, जल धारण क्षमता में वृद्धि, खट्टापन व लवणता में सुधार तथा मिट्टी क्षय में भी सुधार आता है।
- हरी खाद के प्रयोग से मृदा जनित रोगों में भी कमी आती है।
- यह खरपतवारों की वृद्धि भी रोकने में सहायक है।
- हरी खाद के उपयोग से रासायनिक उर्वरको की लागत में कमी करके टिकाऊ खेती के साथ - साथ मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण को भी सुरक्षित किया जा सकता है।

प्याज वर्गीय फसल लीक: मुनाफे की खेती

डॉ. अजीत कुमार श्रीवास्तव, श्री अवनीश कुमार सिंह, डॉ० संदीप प्रकाश उपाध्याय, डॉ० विवेक प्रताप सिंह, डॉ० राहुल कुमार सिंह, श्रीमती श्वेता सिंह तथा यश कुमार सिंह
महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केंद्र चौकमाफी, पीपीगंज, गोरखपुर

लीक प्याज वर्गीय तीसरी महत्वपूर्ण फसल है। लीक प्याज व लहसुन की तरह गांठ नहीं बनाती, परन्तु इसका तना लम्बा व पत्ते लहसुन की तरह चैड़े होते हैं। पोषक तत्त्वों में भी लीक भरपूर होती है। इसमें उपस्थित प्याज की खुशबू के कारण इसे सलाद, सूप तथा आलू के साथ पकाकर प्याज की तरह सब्जी के रूप में पसन्द किया जाता है।

भूमि एवं जलवायु

दोमट भूमि में लीक अच्छी उगती है। रोपाई से पहले खेत की दो-तीन बार जुताई करके मिट्टी का भुरभुरा तथा समतल कर लें। लीक की भी बढ़वार प्याज की तरह सर्द ऋतु में अच्छा होता है। इसलिए इसे भी सर्दियों में ही उगाया जाता है।

किस्म - पालम पौष्टिक, दवन जाइन्ट।

बीज, उर्वरक एवं खाद

एक हेक्टेयर क्षेत्र में लीक की फसल उगाने के लिए 4-5 किग्रा0 बीज पर्याप्त होता है। लगभग 250 क्विंटल सड़ी-गली गोबर की खाद, 150 किग्रा0 नाइट्रेजन, 60 किग्रा0 फास्फोरस और 100 किग्रा0 पोटाश प्रति हेक्टेयर के हिसाब से डालनी चाहिए। पूर्ण गोबर की खाद, फास्फोरस व पोटाश तथा आधी नाइट्रोजन खेत तैयार करते समय भूमि में मिलायें। शेष नाइट्रोजन दो भागों में रोपाई से एक-एक महीने पश्चात निराई-गुड़ाई के साथ डालें।

बीजाई व रोपाई का समय

उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में : नवम्बर-दिसम्बर
मध्यवर्ती क्षेत्रों में : अक्टूबर- नवम्बर

रोपाई की विधि व अन्तराल

लीक के पौध की रोपाई भी लगभग प्याज की तरह ही करनी चाहिए, परन्तु लीक में ध्यान रहे कि पौधे 10 से 15 सेमी0 गहरी नालियों में लगायें तथा पौधों के बढ़वार के साथ नालियाँ भरी जानी चाहिए। इससे पौधों के तने 10-15 सेमी0 की लम्बाई तक सफेद होते हैं तथा खुदाई के समय तक लगभग 2.5 सेमी0 व्यास के हो जाते हैं। पौधों की रोपाई 30-35 सेमी0 पंक्तियों में तथा 10-15 सेमी0 पौधों में अंतराल पर करनी चाहिए।

सस्य क्रियाएँ

खरपतवार नियत्रण के लिए रोपाई से एक या दो दिन पहले स्टाम्प 3 लीटर या लासो 2 लीटर का प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करें । रोपाई के एक महीने पश्चात हल्की निराई-गुड़ाई अवश्य करें ताकि पौघों की बढ़वार ठीक हो सके। आवश्यक नमी बनाये रखने के लिए 10 से 15 दिन के अंतराल पर सिंचाई अवश्य करें ।

कीट एवं रोग नियंत्रण -

1. थ्रिप्स - पीले भूरे बेलनाकार शिशु व प्रौढ़ दोनों पत्तियों का रस चूसकर हानि पहुँचाते हैं । ग्रसित पत्तियों पर धब्बे पड़ जाते हैं तथा बाद में पत्ते मुड़ जातें हैं । इस कीट के प्रकोप से पत्तियाँ ऊपर की तरफ मुड़ती हैं, जिससे पौधे की दैहिक क्रिया प्रभावित होती है, पौधा छोटा रह जाता है, जिसके कारण पैदावार घट जाती है । यह कीट मोजैक रोग का वाहक भी है ।

नियंत्रण - खेत को खरपतवारेां से मुक्त रखना चाहिए । इस कीट के रासायनिक नियंत्रण हेतु इमीडाक्लोप्रिड 200 एस.एल. की 100 मिली.या क्लोरफेनापाॅयर 10 प्रतिशत एस.सी. की 2 मिली./ लीटर पानी की दर से 2-3 छिड़काव 12-15 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए ।

2. मैगटः यह सफेद मटमैले रंग का कीट हेाता है । यह कीट जड़ों में सुराग कर देता है जिससे पौधे सुख जाते हैं ।

नियंत्रण: इस कीट के नियंत्रण हेतु फिप्रोनील 0.3जी. की 20 किग्रा. मात्रा/हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए तथा डायकोफॉल 18.5 ई.सी. की 1 मिली. लीटर मात्रा/लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए ।

3. बैंगनी धब्बा रोग: इस रोग का फैलाव उस समय अधिक हेाता है जब तापक्रम 25-28 डिग्री सेन्टीग्रेट तथा आर्द्रता 80-90 प्रतिशत रहती है । यह एक फफूँद जनित रोग है । इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों पर सफेद हल्के भूरे रंग के धब्बे दिखायी देते हैं जो नम वातावराण में फैलकर काफी बड़े हो जाते हैं और बाद में इन धब्बों का रंग बीच से बैंगनी हो जाता है । इस रेाग का प्रकोप प्याज की पत्तियों, डण्ठलों पर होता है । रोग की उग्रता बढ़ने पर पत्तियाँ झुलस जाती हैं जिससे उत्पादन प्रभावित होता है ।

नियंत्रण- प्याज बोने से पहले खेत की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें, खरपतवारों व अन्य अवशेषों को एकत्र कर जला दें, पौधशाला को थीरम से उपचारित करें । इसके लिए थीरम 5 ग्राम/वर्गमी. प्रयोग करें । बीज बोने से पहले बीज शोधन का कार्य थीरम की 3 ग्राम मात्रा प्रति किलोग्राम बीज दर से अथवा ट्राइकोडर्मा की 5-10 ग्राम मात्रा/किलोग्राम बीज की दर से करें, रोपाई के तुरन्त बाद मैकोजेब की 2.5 ग्राम मात्रा/लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें फसल पर लक्षण दिखायी देने पर मैंकोजेब 75 प्रतिशत चूर्ण की 2.5 ग्राम/लीटर पानी या क्लोरोथैलोनील 75 प्रतिशत चूर्ण की 2.5 ग्राम/लीटर पानी की दर से 2-3 छिड़काव 10-12 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए ।

4. झुलसा रोग - इस रोग के लक्षण सबसे पहले पत्तियों एवं डण्ठलों पर छोटे-छोटे सफेद एवं हल्के पीले धब्बे बनते हैं जो बाद में एक दूसरे से मिलकर बड़े व भूरे रंग के हो जाते हैं और अन्त में गहरे भूरे या काले रंग के दिखायी देते हैं। पत्तियाँ धीरे-धीरे सिरे की तरफ से सुखना शुरू करती हैं और आधार के तरफ बढ़कर पूरी सूख जाती हैं। इस रोग के कारण भी उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

नियंत्रण - इस रोग का नियंत्रण कार्य प्याज के बैंगनी धब्बा रोग प्रबंधन के अनुसार ही करना चाहिए।

खुदाई व उपज

लीक पौध रोपड़ से खुदाई तक लगभग 140 दिन का समय लेती है। पौधे जब 2-3 सेमी0 व्यास के हो जाये तो इन्हें उखाड़ लेना चाहिए। अच्छी देखभाल से उगाई हुई फसल से औसतन 300-400 क्विंटल पैदावार मिल सकती है।

बीज प्राप्त करने का स्रोत

- गोविन्द बल्लभ पन्त, कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पन्तनगर, उत्तरांचल।
- भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर, कर्नाटक।
- भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, बनारस।
- www.burpee.com (on line booking)

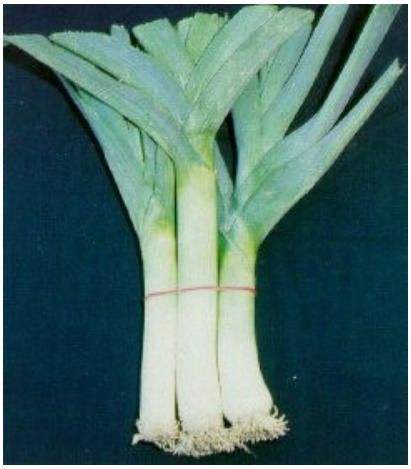

बैकयार्ड मुर्गी पालन: आय और रोजगार का अतिरिक्त साधन

डॉ. विवेक प्रताप सिंह, श्री अवनीश कुमार सिंह, डॉ० संदीप प्रकाश उपाध्याय, डॉ० राहुल कुमार सिंह, डॉ० अजीत कुमार श्रीवास्तव श्रीमती श्वेता सिंह तथा यश कुमार सिंह
महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केंद्र चौकमाफी, पीपीगंज, गोरखपुर

देश में बढती जनसंख्या और कृषि जोत के आकर का कम होना कही ना कही रोजगार पर संकट उत्पन्न करता जा रहा है। ग्रामीण अंचल में आर्थिक रूप से पिछड़े कृषको जिनके पास कृषि योग्य भूमि नही के बराबर है उनके लिये बैकयार्ड मुर्गी पालन आय के साथ साथ रोजगार का अच्छा साधन बन सकता है। बैकयार्ड मुर्गी पालन आर्थिक रूप से पिछड़े हुए लोगो को आर्थिक स्वावलंबन दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। बढ़ती आबादी और घटते रोजगार के क्षेत्र में बैकयार्ड मुर्गी पालन एक सफल व्यवसाय के साथ साथ रोजगार का जरिया बन सकता है। आजकल बेरोजगार युवक कृषि के साथ साथ पशुपालन को व्यवसाय के रूप में बहुत तेजी से अपना रहे हैं इनका प्रमुख कारण इन से होने वाले अतिरिक्त लाभ से है। इन्ही व्यवसायों में से एक है बैकयार्ड मुर्गी पालन। यह एक ऐसा व्यवसाय है जो आय का अतिरिक्त साधन बन सकता है। यह व्यवसाय बहुत कम लागत में शुरू किया जा सकता है और इसमें मुनाफा भी काफी ज्यादा है।

देश में रोजगार तलाश रहे युवा इसे रोज़गार के तौर पर अपना सकते है। पिछले चार दशकों में मुर्गीपालन ब्यवसाय क्षेत्र में शानदार विकास के बावजूद, कुक्कुट उत्पादों की उपलब्धता तथा मांग में काफी बड़ा अंतर है। वर्तमान में प्रति व्यक्ति वार्षिक 180 अण्डों की मांग के मुकाबले 70 अण्डों की उपलब्धता है। इसी प्रकार प्रति व्यक्ति वार्षिक 11 कि.ग्रा. मीट की मांग के मुकाबले केवल 3.8 कि.ग्रा. प्रति व्यक्ति कुक्कुट मीट की उपलब्धता जनसंख्या में वृद्धि जीवनचर्या में परिवर्तन, खाने-पीने की आदतों में परिवर्तन, तेजी से शहरीकरण,प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरुकता, युवा जनसंख्या के बढ़ते आकार आदि के कारण कुक्कुट उत्पादों की मांग में जबरदस्त वृद्धि हुई है।

वर्तमान बाजार परिदृश्य में कुक्कुट उत्पाद उच्च जैविकीय मूल्य के प्राणी प्रोटीन का सबसे सस्ता उत्पाद है। मुर्गीपालन व्यवसाय से भारत में बेरोजगारी भी काफी हद तक कम हुई है। कम लागत में अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है परंतु इसमें आपकी मेहनत और लगन पर सब कुछ निर्भर है।

किसान इन व्यवसायों को अपना लेते हैं लेकिन उस व्यवसाय के बारे में उचित जानकारी के अभाव में सही मुनाफा नहीं उठा पाते हैं। अगर मुर्गी पालन में सही प्रजाति के चूजे, देखभाल, पौष्टिक आहार, बिमारियों से बचने का टीका एवं साफ़ सफाई सही ढंग से किया जाए तो एक बेहतर आय बनाई जा सकती है। लघु, सीमांत एवं भूमिहीन किसानों के लिए बैकयार्ड मुर्गी पालन एक बहुत ही लाभकारी व्यवसाय सिद्ध हो सकता है। बैकयार्ड मुर्गी पालन में मुर्गियों को आंगन या घर के पिछवाड़े में पड़ी खाली जगह में आसानी से पाला जा सकता है। बैकयार्ड मुर्गी पालन में किसान देसी मुर्गियो का चयन कर अपनी आय को बढ़ा सकता है। यह मुर्गियां आहार के रूप में हरे चारे एवं घर से बचे फल सब्जियों के छिलके अनाज, खरपतवार के बीच दाने एवं कीड़े मकोड़ों इत्यादि को खाकर अपना जीवन यापन कर ले लेती हैं। लेकिन अधिक उत्पादन हेतु इनको कुछ अतिरिक्त आहार की भी आवश्यकता होती है इसलिए उनको मक्का, बाजरा, चावल खली, कैल्शियम इत्यादि भी देना चाहिए।

कैसे करें शुरुआत किसान 20 से 30 देसी मुर्गियों से इस व्यवसाय को शुरू कर सकता है। इन मुर्गियों के 1 दिन के चूजों की कीमत लगभग 30 से 60 रुपये तक हो सकती है। देसी मुर्गियों में अंडे सेने का गुण होता है जिसका लाभ यह होता है कि किसानों को बार-बार चूजे खरीदने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। देशी मुर्गियां साल में 160 से 180 अंडे देती हैं जिनका बाजार में मूल्य अधिक होता है। देशी मुर्गी पालन से प्राप्त अंडे का बहुत ज्यादा मांग है। आजकल इसको जैविक अंडा के रूप मे इस्तेमाल किया जा रहा है। इसकी कीमत आमतौर पर साधारण अंडे के मुक़ाबले 3 से 4 गुना यानि कि 15 से 20 रुपया तक होता है। इसके मार्केटिंग मे कोई परेशानी नहीं आती है।

बैकयार्ड पोल्ट्री में पालने योग्य नश्ले असील, कड़कनाथ, ग्रामप्रिया, स्वरनाथ, केरी श्यामा, निर्भीक, श्रीनिधि, वनराजा, कारी उज्जवल एवं कारी उत्तम जैसी नश्लो का पालन किया जाता है।

बैकयार्ड मुर्गी पालन के लाभ

- लघु सीमांत एवं भूमिहीन किसानों जिनके पास बजट कम होता है वह आसानी से कम लागत लगाकर अतिरिक्त आय अर्जित कर सकते हैं।
- पोषक तत्वों से भरपूर अंडा प्रोटीन का सबसे अच्छा स्रोत है जो घर-परिवार पोषण स्तर में भी सुधार करता है।
- रसोई से निकले हुए अपशिष्ट पदार्थ जिन्हें फेंक दिया जाता है बैकयार्ड मुर्गी पालन में इसका उपयोग किया जा सकता है।
- घर के आस-पास पड़े खाली स्थानों का सदुपयोग होता है और आर्थिक आवश्यकताओं को पूरी करने में योगदान देता है।
- देसी मुर्गियों का बाजार मूल्य और मांग अधिक होने के कारण इन्हें बेचने में समस्या नही आती है।
- इनमे रोग प्रतिरोधक क्षमता अच्छी होती है।

देशी मुर्गी ब्रायलर मुर्गियों से बहुत अलग होती है। इन मुर्गियां का ब्रायलर मुर्गियों की तुलना में बहुत धीरे विकास होता है। इन्हें 1-2 किलो का वज़न तक होने में लगभग 4-5 महीना लगता है। यह मुर्गियां ब्रायलर मुर्गियों के मुकाबले बहुत शक्तिशाली और सक्रिय होते हैं और बाज़ार में भी ब्रायलर मुर्गियों कि तुलना में इसका अधिक मूल्य होता है। देसी मुर्गी कि सबसे ख़ास बात यह होती है की इसमें मुर्गी दाना की सबसे कम ज़रुरत पड़ती है और बहुत कम जगह में यह आराम से रह जाती हैं इसलिए इनको बड़ी आसानी से पाला जा सकता है। भारत मे मुर्गियों की बहुत सी प्रजातियां पायी जाती है कृषक इनमें से अपने इच्छा अनुसार चुन सकते हैं-

बैकयार्ड हेतु उपयोगी मुर्गियों की नस्लें:

असील: यह नस्ल भारत के उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश और राजस्थान में पाई जाती है। भारत के अलावा यह नस्ल ईरान में भी पाई जाती है जहाँ इसे किसी अन्य नाम से जाना जाता है। इस नस्ल का चिकन बहुत अच्छा होता है। इन मुर्गियों का व्यवहार बहुत ही झगड़ालू होता है इसलिए मानव जाति इस नस्ल के मुर्गों को मैदान में लड़ाते हैं। मुर्गों का वजन 4-5 किलोग्राम तथा मुर्गियों का वजन 3-4 किलोग्राम होता है। इस नस्ल के मुर्गे-मुर्गियों की गर्दन और पैर लंबे होते हैं तथा बाल चमकीले होते हैं। मुर्गियों की अंडे देने की क्षमता काफी कम होती है।

कड़कनाथ: आजकल यह नश्ल काफी प्रचलित होते जा रहा है। इस नस्ल का मूल नाम कलामासी है, जिसका अर्थ काले मांस वाला पक्षी होता है। कड़कनाथ नस्ल मूलतः मध्य प्रदेश में पाई जाती है। इस नस्ल के मीट में 25% प्रोटीन पायी जाती है जो अन्य नस्ल के मीट की अपेक्षा अधिक है। कड़कनाथ नस्ल के मीट का उपयोग कई प्रकार की दवाइयां बनाने में भी किया जाता है इसलिए व्यवसाय की दृष्टि से यह नस्ल अत्यधिक लाभप्रद है। यह मुर्गिया प्रतिवर्ष लगभग 80 अंडे देती है। इस नस्ल की प्रमुख किस्में जेट ब्लैक, पेन्सिल्ड और गोल्डेन है।

ग्रामप्रिया: ग्रामप्रिया को भारत सरकार द्वारा हैदराबाद स्थित अखिल भारतीय समन्वय अनुसंधान परियोजना के तहत विकसित किया गया है। इसे ख़ास तौर पर ग्रामीण किसान और जनजातीय कृषि विकल्पों के लिये विकसित गया है। इनका वज़न 12 हफ्तों में 1.5 से 2 किलो होता है। इनके मीट का प्रयोग तंदूरी चिकन बनाने में अधिक किया

जाता है। ग्रामप्रिया एक साल में औसतन 210 से 225 अण्डे देती है। इनके अण्डों का रंग भूरा होता है और उसका वज़न 57 से 60 ग्राम होता है।

कामरूप: यह बहुआयामी चिकन नस्ल है जिसे असम में कुक्कुट प्रजनन को बढ़ाने के लिए अखिल भारतीय समन्वय अनुसंधान परियोजना द्वारा विकसित किया गया है। यह नस्ल तीन अलग-अलग चिकन नस्लों का क्रॉस नस्ल है, असम स्थानीय (25%), रंगीन ब्रोइलर (25%) और ढेलम लाल (50%)। इसके नर चिकन का वज़न 40 हफ़्तों में 1.8 – 2.2 किलोग्राम होता है। इस नस्ल की प्रतिवर्ष अण्डे देने की क्षमता लगभग 118-130 होती है जिसका वज़न लगभग 52 ग्राम होता है।

चिटागोंग: यह नस्ल सबसे ऊँची नस्ल मानी जाती है। इसे मलय चिकन के नाम से भी जाना जाता है। इस नस्ल के मुर्गे 2.5 फिट तक लंबे तथा इनका वजन 4.5 – 5 किलोग्राम तक होता है। इनकी गर्दन और पैर बाकी नस्ल की अपेक्षा लंबे होते है। इस नस्ल की प्रतिवर्ष अण्डे देने की क्षमता लगभग 70-120 अण्डे है।

केरी श्यामा: यह कड़कनाथ और कैरी लाल का एक क्रास नस्ल है। इस किस्म के आंतरिक अंगों में भी एक गहरा रंगद्रव्य होता है, जिसे मानवीय बीमारियों के इलाज़ के लिए जनजातीय समुदाय द्वारा प्राथमिकता दी जाती है। यह ज्यादातर मध्यप्रदेश, गुजरात और राजस्थान में पायी जाती है। यह नस्ल 24 सप्ताह में पूर्ण रूप से परिपक्व हो जाती है और तब इनका वज़न लगभग 1.2 किलोग्राम(मादा) तथा 1.5 किलोग्राम(नर) होता है। इनकी प्रजनन क्षमता प्रतिवर्ष लगभग 85 अण्डे होती है।

झारसीम: यह झारखंड की मूल दोहरी उद्देश्य नस्ल है इसका नाम वहाँ की स्थानीय बोली से प्राप्त हुआ है। ये कम पोषण पर जीवित रहती है और तेज़ी से बढ़ती है। इस नस्ल की मुर्गियाँ उस क्षेत्र के जनजातीय आबादी के आय का स्रोत है। ये अपना पहला अण्डा 180 दिन पर देती है और प्रतिवर्ष 165-170 अण्डे देती है। इनके अण्डे का वज़न लगभग 55 ग्राम होता है। इस नस्ल के पूर्ण परिपक्व होने पर इनका वज़न 1.5 – 2 किलोग्राम तक होता है।

देवेंद्र नस्ल: यह एक दोहरी उद्देश्य चिकन है। यह पुरूष और रोड आइलैंड रेड के रूप में सिंथेटिक ब्रायलर की एक क्रॉस नस्ल है। 12 सप्ताह में इसका शरीरिक वज़न 1800 ग्राम होता है। 160 दिन में ये पूर्ण रूप से परिपक्व हो जाती है। इनकी वार्षिक अण्डा उत्पादन क्षमता 200 है। इसके अण्डे का वज़न 54 ग्राम होता है।

श्रीनिधि: इस प्रजाति की भी मुर्गियां दोहरी उपयोगिता वाली होती हैं यह लगभग 210 से 230 अंडे तक देती है। इनका वजन 2.5 किलोग्राम से 5 किलोग्राम तक होता है जो कि ग्रामीण मुर्गियों से काफी ज्यादा होता है और इन से अधिक मात्रा में मांस और अंडे दोनों के जरिए अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है। इस प्रजाति की मुर्गियों का विकास काफी तेजी से होता है।

वनराजा: शुरुआत में मुर्गी पालन करने के लिए यह प्रजाति सबसे अच्छी मानी जाती है ये मुर्गी 3 महीने में 120 से 130 अंडे तक देती हैं और इसका वज़न भी 2.5-5 किलो तक जाता है। हालांकि यह प्रजाति अन्य प्रजाति से थोडा कम क्रियात्मक और सक्रिय रहते हैं।

प्राकृतिक खेती - उत्पादन की कम लागत द्वारा किसानों की शुद्ध आय बढ़ाने में सहायक

एन.एम.सिंह, राजु आर., अलका सिंह, ओम प्रकाश सिंह एवं कुन्दन कुमार
कृषि अर्थशात्र संभाग,कृषि प्रसार संभाग ,भा.कृ.अ.प.-भा.कृ.अ.सं., नई दिल्ली

परिचय

प्राकृतिक रूप से खेती के तरीके को प्राचीन काल से ही बेहतर माना जाता रहा है। प्राकृतिक खेती भारतीय प्राचीन कृषि पद्धतियों पर आधारित है। उत्पादन की **न्यूनतम लागत** के कारण यह प़द्धति **जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग (जे.बी.एन.फ)** के नाम से भी जानी जाती है। इसमें किसान के घर में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग खेती करने में किया जाता है। इसमें किसान के पास एक देशी गौवंश का होना जरूरी है। एक देशी गाय से किसान 30 एकड़ तक प्राकृतिक खेती करने में सक्षम होता है। इसे रसायन मुक्त पशुधन आधारित कृषि के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। इस पद्धति में खेतों की जुताई, मिट्टी को पलटना व निराई गुड़ाई नहीं की जाती व इसके स्थान पर मृदा की उर्वरा शक्ति और अच्छे पोषण में योगदान देनेवाले लाभकारी मिट्टी के जीवों, केंचुओं व जीवाणुओं को पुनर्जीवित करने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। इसमें वर्षा के जल को प्राकृतिक रूप से संचित करने पर महत्व दिया जाता है। प्राकृतिक खेती हमें सिंथेटिक केमिकल उर्वरकों व कीटनाशकों के प्रयोग से बचाती है व केमिकल उर्वरकों के स्थान पर गोबर की खाद, फसल अवशेषों से खाद, जीवाणु खाद का प्रयोग किया जाता है। व रासायनिक कीटनाशकों के विकल्प में जैविक कीटनाशकों जेसे अग्निअस्त्र , ब्रह्माअस्त्र और नीमअस्त्र का प्रयोग किया जाता है। इस पद्धति में स्वस्थ पौधों से स्वयं बीज तैयार करने पर महत्व दिया जाता है। प्राकृतिक खेती जैव विविधता के अधिकतम कार्यात्मक प्रयोग द्वारा फसलों, पेड़ों और पशुधन को एकीकृत करती है।

यह पद्धति मिट्टी की **उर्वरा शक्ति** और **पर्यावरणीय स्वास्थ्य** को बढ़ाने तथा **ग्रीन हाउस उत्सर्जन** को कम करने या निम्न करने जैसे कई अन्य लाभ प्रदान करते हुए किसानों की **शुद्ध आय** बढ़ाने में सहायक है

उद्देश्य

- **किसानों की शुद्ध आय में वृद्धि करना:** इसमें इंटर-क्रापिंग की विधि द्वारा शुद्ध आय में वृद्धि करना व उत्पादन लागत में कमी द्वारा खेती को व्यावहारिक और अनुकूल बनाना।
- **उत्पादन लागत में भारी कटौती करना:** इसमें जैविक आदानों को तैयार करने के लिए किसानों के खेत, प्राकृतिक स्रोत, पशुधन और घरेलू संसाधनों का उपयोग कर उत्पादन लागत को कम करना है।

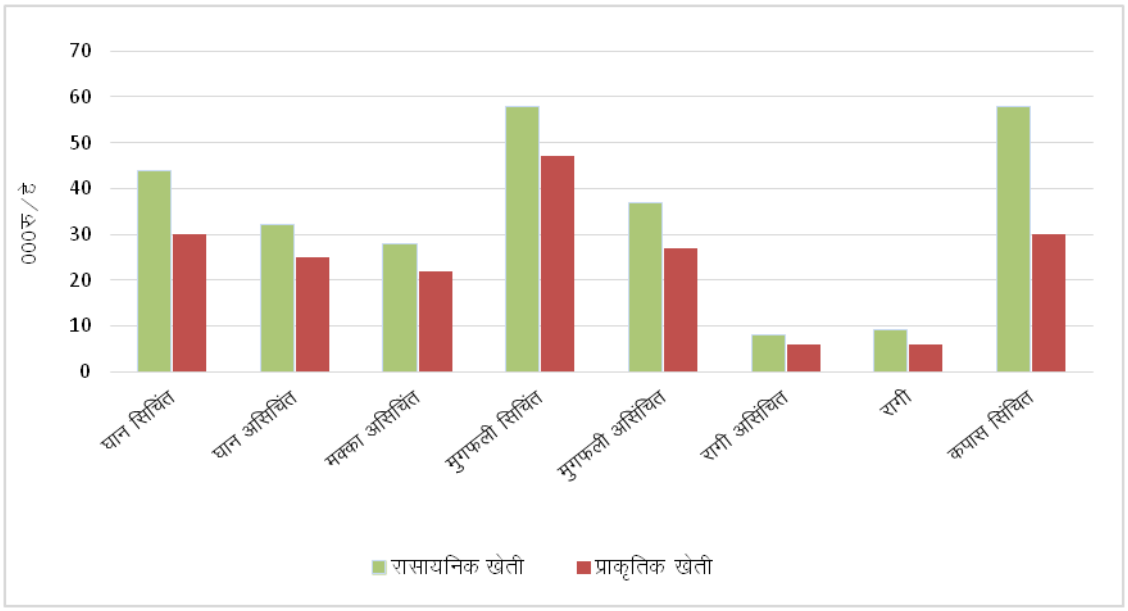

Source :Jan 2020, International journal of Agricultural sustainability.

चित्र 1 प्राकृतिक खेती व रासायनिक खेती के अन्तर्गत इनपुट लागत; 000 रु/हे खरीफ फसल

महत्व

- **उत्पादन की न्यूनतम लागतः** प्राकृतिक खेती में रासायनिक खादों, रासायनिक कीटनाशकों, जुताई व निराई-गुड़ाई की लागत, बीज खरीदने का खर्च काफी कम हो जाता है। सिंचाई व बिजली की आवश्यकता कम हो जाती है। प्राकृतिक स्रोत, पशुधन और घरेलू संसाधनों का उपयोग कर कुल उत्पादन लागत न्यूनतम हो जाती है।
- **मृदा उर्वरा शक्ति को पुनर्जीवित करनाः** प्राकृतिक खेती में **बंजर भूमि** को भी एक या दो वर्षा में कृषि योग्य बनाने की क्षमता है। जीवामृत व आच्छादन विधियों का उपयोग, प्राकृतिक रूप से मृदा के कार्बन में वृद्धि कर मृदा को आश्चर्यजनक रूप से उपजाऊ बना देता है।
- **फसल उत्पाद का भाव अधिक व लागत कमः** प्राकृतिक खेती से प्राप्त फसल उत्पाद केमिकल फ्री होने के कारण अधिक स्वास्थ्यवर्धक, स्वादिष्ट व उच्च कोटि के होते हैं जिसका बाजार भाव 25% से 30% अधिक प्राप्त होता है व इसमें उत्पादन की लागत न्यूनतम होती है।
- **रोजगार सृजन व ग्रामीण विकास की संभावनाएं** यह पद्धति नये उद्यमों, मूल्य वर्धन, स्थानीय क्षेत्रों में विपणन आदि में रोजगार के सृजन में सहायक है। इससे ग्रामीण युवाओं का पलायन रूकेगा।
- **पशुधन स्थिरताः** कृषि प्रणाली में पशुधन का एकीकरण प्राकृतिक खेती में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और परिस्थितिकी तंत्र के पुनर्चक्रण में मदद करता है। प्राकृतिक खेती का मूल स्तम्भ पशुधन ही है। जीवामृत और बीजामृत जैसे इको-फ्रेंडली बायों इनपुट गाय के गोबर व गोमूत्र से ही तैयार किये जाते हैं।

- **कम सिंचित क्षेत्रों में अधिक उपयोगी:** इसमें गोबर की खाद, फसल अवशेषों से खाद, जीवाणु खाद का उपयोग व आच्छादन की विधि द्वारा जल की खपत कम होने के कारण ,कम सिंचित क्षेत्रों में अधिक उपयोगी पाई गई है। इस विधि में सिंचाई व बिजली की आवश्यकता न्यूनतम हो जाती है।
- **स्वस्थ फसल व लचीलापनः** प्राकृतिक खेती पद्धति में मृदा की संरचना अच्छी हो जाने से पौधे स्वस्थ होकर सूखे, चक्रवात व बाढ़ जैसी परिस्थितियों की गंभीरता कम कर देते हैं व मौसम की चरम सीमाओं के खिलाफ फसलों को लचीलापन प्रदान करते हैं, इस प्रकार प्राकृतिक खेती किसानों को आर्थिक सबलीकरण प्रदान करती है।

प्राकृतिक खेती के मूल स्तम्भ

1. बीजामृत

यह प्रथम चरण होता है जिसमें देशी गायों के गोबर, गोमूत्र, चूने व खेत की मिट्टी से बीज शोधन (सीड ट्रीटमेंट) का कार्य किया जाता है। इसमें गाय का गोबर 5 किलोग्राम, गोमूत्र 5 लीटर, चूना 50 ग्राम, पानी की मात्रा 20 लीटर, एक मुठ्ठी खेत की मिट्टी, इस मिश्रण को 24 घंटे तक रखने पर बीजामृत तैयार हो जाता है।

2. जीवामृत

इस विधि में गाय के गोबर, गोमूत्र व अन्य जैविक पर्दाथो का एक घोल तैयार कर किण्वन (फर्मेंटेशन) किया जाता है। इसे तैयार करने के लिए देशी गाय का गोबर 10 किलो, गोमूत्र 10 लीटर, गुड़ या फलो का गूदा (पल्प) 1 से 2 किलो , और मूंग या अरहर या चने का आटा 1 से 2 किलो, जीव युक्त मिट्टी एक मुठ्ठी, पानी 200 लीटर इस मिश्रण को मिलाकर 2 से 3 दिनों तक किण्वन (फर्मेंटेशन) छाँव में रखकर तैयार किया जाता है।

3. आच्छादन

इसमें जुताई के स्थान पर फसल के अवशेषों को भूमि पर आच्छादित कर दिया जाता है। इसमें सूक्ष्म जीवाणु और केंचुए भूमि में अंदर बाहर चक्कर लगाकर भूमि को बलवान, उर्वरा एवं समृद्ध बनाने का काम करते रहते हैं। आच्छादन से मृदा की नमी और उष्णता वातावरण में न जाकर मृदा में ही बची रहती है, जिस कारण सिंचाई की कम मात्रा की आवश्यकता पड़ती है।

4. वाफसा

इसमें सिंचाई के स्थान पर मृदा में नमी एवं वायु की उपस्थिति को महत्व दिया जाता है। जिस कारण सिंचाई की मात्रा में 90% तक की कमी हो जाती है। इस विधि में भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के लिए बीजामृत से बीज संस्कार व बीज या पौधे लगाने के बाद जब हम फसलों को सिंचाई के पानी के साथ हर महीने में 1 या 2 बार जीवामृत देते हैं तो मृदा शक्ति में वृद्धि होती है व आच्छादन रूपी विधि द्वारा भूमि के अंदर वाफसा का निर्माण करते है। इससे पौधे स्वस्थ होकर वृद्धि को प्राप्त करते हैं।

अन्य मुख्य सिद्धांत

5. अंतर फसल

अंतर फसल विधि व साथ साथ मुर्गीपालन व गोपालन को अपनाकर किसान अपनी शुद्ध आय में वृद्धि कर निरंतर आमदनी प्राप्त करता रहता है व यह इंटर-क्रापिंग विधि खरपतवार नियंत्रण कीट व रोग नियंत्रण व मृदा स्वास्थ्य के लिए भी महत्वपूर्ण व उपयोगी सिद्ध हुई है।

प्राकृतिक खेती पद्धति में कीट नियन्त्रण

इस पद्धति में रासायनिक कीटनाशकों के विकल्प में जैविक कीटनाशकों जैसे अग्निअस्त्र ,ब्रह्माअस्त्र और नीमअस्त्र का प्रयोग किया जाता है। इसे किसान के खेत में ही उपलब्ध संसाधनों से जैसे गाय का गोबर ,गोमूत्र, हरी मिर्च, नीम का गूदा(पल्प) व नीम की पत्तियो का उपयोग कर तेयार किया जाता है। यह जैविक कीटनाशक लीफरोलर, स्टेम बोरर , फ्रूट बोरर, पॉड बोरर ,सकिंग पेस्ट और मिली बग जैसे सभी तरह के नुकसानदायक कीटो को नियंत्रण करने मे उपयोगी सिद्ध हुआ है।

निष्कर्ष

भारत सरकार किसानों की आय को दोगुनी करने के उद्देश्य से **प्राकृतिक खेती** को एक विकल्प के रूप में प्रोत्साहित कर रही है। **कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय** व **नीति आयोग** इस पद्धति को प्रोत्साहन प्रदान करने की दिशा में कार्य कर रहे हैं। प्राकृतिक खेती सहित पारम्परिक स्वदेशी **पद्धतियो** को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार द्वारा **भारतीय प्राकृतिक कृषि पद्धति योजना (बी.पी.के.पी.) 2020-21** की शुरूआत की गई। इसके अंतर्गत, कलस्टर निर्माण, समता निर्माण और पर्शिक्षित कर्मियों द्वारा प्रमाणीकरण और अवशेष विश्लेषण के लिए प्रति हेक्टेयर 12200.00 रूपयों की वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। अब तक ,प्राकृतिक खेती के तहत देश भर के 8 राज्यों में 4.09 लाख हेक्टेयर क्षेत्र को कवर किया गया है। जो देश भर के कुल कृषि उत्पादन क्षेत्र का सिर्फ दो प्रतिशत है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा गठित कमेटी ने कई रिसर्च पेपर्स के अध्ययन के पश्चात् इस पद्धति से सम्बंधित अपनी रिपोर्ट मे यह सलाह दी गयी है कि प्राकृतिक खेती को इंटर-क्रापिंग विधि, केंचुआ खाद व नियमित जैविक खादों के प्रयोगों के साथ कम सिंचित क्षेत्रों में अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है व साथ साथ ये भी आगाह किया है कि जैविक खादों का प्रयोग कम या बिल्कुल न करने से दो या तीन वर्षो के पश्चात् उत्पादन घट सकता है। इसके लिए आगे अध्ययन करने के लिए कम सिंचित (रेनफेड) क्षेत्रों में रिसर्च ट्रायल प्रोजेक्ट लगाने का निर्णय लिया गया है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद - **भा.कृ.अ.सं.** द्वारा इस पद्धति को प्रोत्साहन प्रदान करने व इसके प्रसार के लिए प्राकृतिक खेती के विषय को सभी कृषि विश्वविद्यालय के **स्नातक** और **स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम** में शामिल करने का निर्णय लिया गया है व इसके साथ अलग से एक **वर्षीय सर्टिफिकेट** कोर्स व **दो वर्षीय डिप्लोमा कोर्स** का प्रारूप तैयार करने का भी फैसला लिया गया है ताकि ज्यादा संख्या मे युवाओ व किसान भाईयो को प्रशिक्षित किया जा सके। किसान भाई आगे भविष्य में प्राकृतिक खेती से सम्बन्धित जानकारी के लिए **भा.कृ.अ.प.-**

भा.कृ.अ.सं., नई दिल्ली के साथ जुड़कर मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

स्रोत

Bharucha, Z.P., Mitjans, S.B.and Pretty, J. (2020). Towards redesign at scale through zero budgetnatural farming in Andhra Pradesh, India. International Journal of Agricultural Sustainability. 18: 1-20.

Manida, M. (2021). Zero Budget Natural Farming in Tamil Nadu. Agriculture & Food:e- Newsletter. 3 (4): 260-262. (www. researchgate.net)

www.apzbnf.in

www.chronicleindia.in

www.khetikisaani.in

www.niti.gov.in

मूंग की उन्नत खेती

संजीत कुमार

वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केंद्र, जौनपुर-2

किसान भाईयों, मूंग ग्रीष्म एवं खरीफ दोनो मौसम की कम समय में पकने वाली एक मुख्य दलहनी फसल है । इसके दाने का प्रयोग मुख्य रूप से दाल के लिये किया जाता है जिसमें 24-26 प्रतिशत प्रोटीन, 55-60 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट एवं 1.3 प्रतिशत वसा होता है । दलहनी फसल होने के कारण इसकी जड़ो में गांठे पाई जाती है जो कि वायुमण्डलीय नत्रजन का मृदा में स्थिरीकरण (38-40 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टयर) एवं फसल की खेत से कटाई उपरांत जड़ो एवं पत्तियो के रूप में प्रति हैक्टयर 1.5 टन जैविक पदार्थ भूमि में छोड़ा जाता है जिससे भूमि में जैविक कार्बन का अनुरक्षण होता है एवं मृदा की उर्वराशक्ति बढाती है ऐसे इलाके, जहां पर 60 से 75 सेंटीमीटर तक सालाना बारिश होती है, मूंग की खेती के लिए उपयुक्त हैं।

भूमि: सिंचित एवं असिंचित दोनों क्षेत्रों में इस की खेती आसानी से की जा सकती है । इस की सफलतापूर्वक खेती के लिए अच्छी जल निकासी वाली बलुई दोमट मिट्टी सब से अच्छी मानी जाती है।

मूंग की प्रजातियां: नरेंद्र मूंग 1, पंत मूंग 2, पंत मूंग 4, एच.यू.एम.6, सुनैना, जवाहर मूंग 45, जवाहर मूंग 70 आदि।

बीज की मात्रा: गरमी के मौसम में मूंग के लिए बीज दर 20 किलोग्राम प्रति हेक्टयर रखनी चाहिए और बोआई कतारों में 20 से 25 सेंटीमीटर की दूरी पर करनी चाहिए । खरीफ मौसम में 12 से 15 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टयर की दर से डालना फायदेमंद होगा और बोआई कतारों में 30 से 40 सेंटीमीटर की दूरी पर करनी चाहिए।

बोआई का समय व तरीका: जायद मूंग की बोआई, जहां सिंचाई की सुविधा हो वहां रबी फसलों की कटाई के तुरंत बाद कर देनी चाहिए । खरीफ मौसम में मूंग की बोआई मानसून आने पर जून के दूसरे पखवाडे से जुलाई के पहले पखवाडे के बीच करनी चाहिए । मूंग की बोआई कतारों में करनी चाहिए । 2 कतारों के बीच की दूरी 30 से 45 सेंटीमीटर रखनी चाहिए । बीजों को 4 से 5 सेंटीमीटर की गहराई पर बोना चाहिए । मूंग के बीजों को पहले कार्बेंडाजिम से उपचारित करने के बाद ही बोना चाहिए।

खेत की तैयारी: खेत में 1 बार मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई कर के 2 से 3 बार कल्टीवेटर या देशी हल से जुताई करनी चाहिए और पाटा चला कर खेत को बराबर बना लेना चाहिए।

खाद व उर्वरक: मूंग दलहनी फसल है, इसलिए इस में ज्यादा नाइट्रोजन की जरूरत नहीं पड़ती है, फिर भी 20 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50 किलोग्राम फास्फोरस व 20 किलोग्राम पोटाश की मात्रा प्रति हेक्टयर की दर से बोआई के समय देना फायदेमंद होगा । गंधक की कमी वाले क्षेत्रों में गंधकयुक्त उर्वरक 20

किलोग्राम प्रति हेक्टेयर के हिसाब से देना चाहिए। सभी चारों तरह के उर्वरकों की पूरी मात्रा बोआई से पहले या बोआई के समय ही देनी चाहिए।

सिंचाई व जल निकास: खरीफ में मूंग की फसल को सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती है, अधिक बारिश की दशा में खेत से पानी निकालना बेहद जरूरी होता है। पानी न निकालने से पद्गलन रोग हो जाता है, जिससे फसल को भारी नुकसान होता है। गरमी में मूंग की फसल में खरीफ की तुलना में पानी की ज्यादा जरूरत होती है। गरमी के मौसम में 15 से 20 दिनों के अंतर पर 3 से 4 सिंचाई करनी चाहिए।

निराई-गुडाई व खरपतवार नियंत्रण: बोआई के 15 से 20 दिनों बाद पहली और 40 से 45 दिनों बाद दूसरी निराई करनी चाहिए। घास व चैड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को रासायनिक विधि द्वारा खत्म करने के लिए फ्लूक्लोरिलिन 45 ईसी की 1.5 लीटर मात्रा हेक्टेयर 800 से 1000 लीटर पानी में घोल कर बोआई से पहले खेत में छिड़काव करें।

मूंग के कीट

काला लाही माहूं: नए पौधे से फली निकलने की दशा में इस कीट के शिशु व वयस्क पौधों की पत्तियों पर पाए जाते हैं। ये बसंतकालीन फसल की मुलायम टहनियों, फूलों व कच्ची फलियों से रस चूसते हैं।

रोकथाम: माहूं का प्रकोप होने पर पीले चिपचिपे ट्रैप का इस्तेमाल करें, ताकि माहूं ट्रैप पर चिपक कर मर जाएं। नीम का अर्क 5 प्रतिशत या 1.25 लीटर नीम का तेल 100 लीटर पानी में मिला कर छिड़कें। इस के बावजूद रोकथाम न हो तो मेटासिस्टाक्स 25 ईसी या डाइमेथोएट 30 ईसी या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल या थायोमेक्जाम 25 ईसी 1 मिलीमीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़कें।

हरा फुदका (जैसिड): फसल की शुरुआती दशा से ले कर पौधों की पत्तियां व फलियां निकलने तक इस के शिशु व वयस्क हमला कर के रस चूसते हैं। रोगी पौधों की बढ़वार सामान्य से काफी कम हो जाती है।

रोकथाम: अकेली फसल की बजाय मिश्रित खेती करनी चाहिए। खासकर ज्यादा लंबाई वाली फसलों जैसे गन्ना, ज्वार व सूरजमुखी वगैरह में से किसी एक को मूंग के साथ 6 : 1 या 6 : 2 के अनुपात में लगाना चाहिए। इस से रोशनी पसंद करने वाले हरा फुदका जैसे कीड़ों की संख्या पर बहुत हद तक नियंत्रण हो जाता है। इस के बाद भी रोकथाम न हो तो मेटासिस्टाक्स 25 ईसी या डाइमेथोएट 30 ईसी या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल या थायोमेक्जाम 25 ईसी 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़कें।

सफेद मक्खी: इस इस कीट के द्वारा फसल को कई तरह से नुकसान पहुंचाया जाता है। यह पौधों से रस चूसती है और पत्तियों पर स्रावित मधु छोड़ती है। द्रव पर काला चूर्णी फफूंदी (शूटी मोल्ड) के पनपने व फैलने से प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में रुकावट होती है और पीला चितकबरा रोग (पीला मोजैक) के विषाणु तेजी से फैलते हैं। रोगी फसल पूरी तरह से बरबाद हो जाती है।

रोकथाम: सफेद मक्खी से बचाव के लिए बोआई से 24 घंटे पहले डायमेथोएट 30 ईसी कीटनाशी रसायन से 8.0 मिलीलीटर प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करना चाहिए। शुद्ध फसल के

बजाय मिश्रित खेती करना ज्यादा लाभप्रद है। खासकर ज्यादा लंबाई वाली फसलों जैसे गन्ना, ज्वार व सूरजमुखी वगैरह में से किसी एक को मूंग के साथ 6:1 या 6:2 अनुपात से लगाने से रोशनी पसंद करने वाले सफेद मक्खी जैसे कीड़ों की संख्या पर बहुत हद तक नियंत्रण हो पाता है।

पीला मोजैक रोग के विषाणु को फैलाने वाली सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए मिथाइल डेमीटान (मेटासिस्टाक्स) 25 ईसी का 625 मिलीलीटर या मैलाथियान 50 ईसी या डायमेथोएट 30 ईसी का 1 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से जरूरत के मुताबिक छिड़काव करना चाहिए।

थ्रिप्स: मूंग की फसल पर फूल की दशा में गरमी में मुलायम कलियों पर थ्रिप्स कीटों का हमला होता है। ये फूलों को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं। मूंग की फलियों पर भी थ्रिप्स कीटों का प्रकोप होता है और उन में दाने विकसित नहीं हो पाते। सभी रस चूसक कीटों में थ्रिप्स सब से ज्यादा हानिकारक है।

रोकथाम: थ्रिप्स की रोकथाम करने के लिए फूल खिलने से पहले ही डायमेथोएट 30 ईसी या मैलाथियान 50 ईसी का 1 लीटर प्रति हेक्टेयर या मेटासिस्टाक्स 25 ईसी का 700 मिलीलीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

नीली तितली: फूल व फली की दशा में इस के पिल्लू मुलायम कलियों व फूलों पर हमला करते हैं। ये फलियों में छेद बना कर घुस जाते हैं व अंदर के ऊतक को खाते हैं। ये फलियों के अंदर विकसित हो रहे दानों को विशेष रूप से नुकसान पहुंचाते हैं।

रोकथाम: फली बेधक नीली तितली की रोकथाम के लिए निबौली (सूखा हुआ नीम बीज) के चूर्ण को पानी में घोल (5.0 प्रतिशत) कर फूल निकलने के साथ छिड़काव करना चाहिए। यदि फली बेधक तितली की संख्या काफी अधिक हो जाए तो फली बनने की शुरुआती अवस्था में मैलाथियान 50 ईसी का 1.0 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

मूंग के रोग

पीली चितेरी रोग (येलो मोजेक): मूंग का पीला चितेरी रोग विषाणु द्वारा पैदा होने वाला सब से खतरनाक रोग है। यह विषाणु बीज व छूने से फैलता है। पीली चितेरी रोग सफेद मक्खी (बेमिसिया टैबेसाई) जो एक रस चूसक कीट है के द्वारा फैलता है। रोग से प्रभावित पौधे देर से पनपते हैं। इन पौधों में फूल और फलियां स्वस्थ पौधों के मुकाबले बहुत ही कम लगती हैं।

रोकथाम: बोआई के लिए रोग रोधी व उन्नत प्रजातियों, नरेंद्र मूंग 1, पीडीएम 11, पूसा विशाल, एच.यू.एम. 6 आदि का चयन करें। सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफास (0. 04 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

झुर्रीदार पत्ती रोग (लीफ क्रिंकल): यह रोग 'उर्द बीन लीफ क्रिंकल विषाणु' द्वारा होता है। रोग का फैलाव पौधे के रस (सैप) व बीज से होता है। यह खेत में लाही (माहूं) व अन्य कीटों द्वारा भी फैलता है। इस विषाणु के संक्रमण से फूल कलिकाओं में पराग कण बांझ हो जाते हैं, जिस से रोगी पौधों में फलियां कम लगती हैं।

रोकथाम: बोआई के लिए रोग रोधी व उन्नत प्रजातियों का चयन करना चाहिए। सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए फसल पर मेटासिस्टाक्स या मैलाथियान या डामेथोएट या मोनोक्रोटोफास (0. 04 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

सर्कोस्पोरा पत्र टिक्का रोग: यह 'सर्कोस्पोरा' नामक प्रजातियों द्वारा होता है। इस रोग के लक्षण पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बों के रूप में प्रकट होते हैं। अनुकूल वातावरण में ये धब्बे बड़े आकार के हो जाते हैं। फूल आने व फलियां बनने के समय रोगी पत्तियां गिर जाती हैं। रोग पैदा करने वाले कवक बीज व रोग ग्रसित पौधों के मलवे पर भूमि में जीवित रहते हैं।

रोकथाम: बोआई से पहले बीजों को कवकनाशी कार्बाडेंजिम 2 ग्राम या थीरम 2-5 ग्राम से प्रति किलोग्राम की दर से उपचारित करना चाहिए। फसल पर रोग के लक्षण दिखाई पड़ते ही कार्बाडेंजीम (0.1 प्रतिशत) कवकनाशी के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

चूर्णी फफूंदी रोग: यह रोग इरीसिफी पोलीगोनाई नामक कवक द्वारा होता है। गरम व सूखे वातावरण में यह रोग तेजी से फैलता है। इस रोग में पौधों की पत्तियों, तनों व फलियों पर सफेद चूर्णी धब्बे दिखाई देते हैं। रोग के ज्यादा होने से पत्तियां पूरी बनने से पहले सूख जाती हैं।

रोकथाम: फसल पर रोग के लक्षण दिखाई पड़ते ही कार्बाडेंजीम की 1 ग्राम या सल्फेक्स 3 ग्राम मात्रा का प्रति लीटर पानी की दर से घोल बना कर छिड़काव करना चाहिए।

कटाई-मड़ाई: फसल की कटाई मूंग की किस्म पर निर्भर करती है। एक ही समय में पकने वाली प्रजाति में जब फसल 80 प्रतिशत तक पक जाती है, तो उसे जड़ से उखाड़ लेते हैं या काट लेते हैं। उस के बाद धूप में सुखा कर ट्रैक्टर चलाकर या लकड़ी के डंडे से पीटकर दाना अलग कर लेते हैं। सही समय पर फसल की गहाई के बाद दाना सुखाकर कर के भंडारण करें।

उपज: मूंग की औसत उपज 8 से 10 क्विंटल प्रति हेक्टयर होती है। उन्नत खेती करने पर इस की पैदावार 12-15 क्विंटल प्रति हेक्टयर तक ली जा सकती है।

सम्पर्क सूत्रः
डॉ. संजीत कुमार, वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष
कृषि विज्ञान केंद्र, जौनपुर-2, मोबाईलः 8174006357
(प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौ. वि. वि., कुमारगंज, अयोध्या)

मृदा का स्वास्थ्य कैंसे जाँचे और इसे कैसे बनाये रखे

दीपक कुमार एवं आदेष सिंह'

सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विष्वविद्यालय, मेरठ - 250110 (उ0प्र0)

मृदा का स्वास्थय बनाये रखने के लिए मृदा स्वास्थय की जाँच करना अति आवश्यक है । इससे उर्वरकों की मात्रा के प्रयोग के बारे में जानकारी प्राप्त होती है जिससे मृदा के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति क्षमता का प्रयोगशाला में जाँचकर निर्धारण किया जा सके कि मृदा मे कौन-कौन से पोषक तत्वों की कमी है और मृदा में हुई कमी को दूर करके ताकि लम्बी अवधि के लिये मृदा स्वास्थय को बनाये रखा जा सके और साथ ही साथ प्रति इकाई क्षेत्रफल में उत्पादन बढ़ा कर किसानों के आर्थिक लाभ में भी वृद्दि हो सके ।

वर्तमान समय में रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध प्रयोग से हमारी मृदा के स्वास्थय में या मृदा की गुणवत्ता में निरंन्तर गिरावट आ रही है जिसके लिए निम्नलिखित संम्भावित कारक उत्तरदायी है-

1. उर्वरको का असंतुलित प्रयोग करना।
2. फसलों के सघन उत्तपादन से मिट्टी में पोषक तत्वों की लगातार कमी हो रही है ।
3. उचित फसल चक्र का प्रयोग न करना तथा फसल चक्र में दलहनी फसलों का समावेश नही करना या कम करना।
4. मृदा में पोषक तत्वों का उपलब्धता के बारे में जानकारी न होना।
5. जैविक खाद का कम प्रयोग करना या प्रयोग न करना।
6. मृदा मे कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में लगातार गिरावट होना।

मृदा स्वास्थय जाँच हेतु मृदा का नमुना कैसे ले?

1. सबसे पहले जिस खेत में मृदा नमुना लेना है उसमें 8-10 स्थानों में निशान लगा लें।
2. चुनी हुई जगह की ऊपरी सतह पर घास या कोई कूड़ा करकट हो तो उसे हटा दें।
3. अब खुरपी या फावड़े की सहायता से चुने हुये स्थानो पर 6 इंच × 4 इंच के गडढे खोद लें।
4. खुरपी से उन गडढें की दीवार से लगभग 2.5 से0मी0 ऊपर से नीचे की परत उतार कर बाल्टी या बर्तन में डालकर अच्छी तरह से मिला लें।
5. अब इन नमूनो को किसी साफ फर्श पर ढेरी बना लें।
6. हाथ से इस ढेर को चार बराबर भागों में बाँट लें।
7. आमने सामने के दो भाग को फेंक दे एवं दो भागों को अच्छी तरह से मिलाये। पुनः ढेर बनाकर उक्त प्रक्रिया तब तक दोहराये जब तक मिट्टी लगभग आधा किलोग्राम न रह जाये।
8. यदि मिट्टी गीली हो तो उसे छाया में सुखा ले और साफ थैली में भर दें।

9. अब दो लेबिल ले उन पर कृषक का नाम, ग्राम का नाम, विकास खण्ड, तहसील तथा जनपद का नाम, मो0 न0, नमूना लेने का दिनाँक, खेत की पहचान, सिंचाई के उपलब्ध स्त्रोत, फसलों का ब्यौरा लिखकर एक लेबिल थैली के अंन्दर एवं एक थैली के ऊपर बाँधकर और एकत्रित मृदा नमूना को अच्छे से पैक करके यथाशीघ्र प्रयोगशाला में जाँच के लिए भेज दें।

मृदा नमूना लेते समय ध्यान देने योग्य बाते:

1. मृदा का नमूना पेड़ो, मेड़ो, खाद का ढेर और रास्तो के आस-पास से नही लेना चाहिए ।
2. मृदा का नमूना लेते समय औजारो का उपयोग करना चाहिए जैसे खुरपी फावड़ा आदि।
3. मृदा नमूनों की थैली साफ सुथरी होनी चाहिए ऐसी थैलियो की प्रयोग न करें जो खाद या रसायनो के उपयोग मे लायी गई हो।
4. खड़ी फसल में मृदा का नमूना नही लेना चाहिए अतः खरीफ रबी जाय़द फसलों की बुआई से पहले मृदा नमूना लेना चाहिए ।
5. मृदा का नमूना इस तरह लेना चाहिए कि वह पूरे खेत का प्रतिनिधित्व करे।
6. नमूना बुआई के लगभग एक माह पहले मृदा जाँच प्रयोगशाला में भेज देना चाहिए जिससे समय पर मृदा जाँच रिपोर्ट मिल सके जिसके अनुसार उर्वरको एवं सुधारको का उपयोग किया जा सके।

मृदा स्वास्थय को कैसे बनाये रखे?

1. कार्बनिक खादो द्वारा
2. हरी खाद द्वारा
3. फसल अवशेष को मृदा में सड़ाकर
4. विभिन्न प्रकार के जैव उर्वरको का प्रयोग से
5. उचित फसल चक्र उपनाकर
6. रसायनिक उर्वरको का सन्तुलित मात्रा में उपयोग करके।

शहद का घरेलू स्तर पर परीक्षण कैसे करें

सौरभ माहेश्वरी और डॉ शकुंतला गुप्ता

'पीजी स्कॉलर कीट विज्ञान विभाग गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर

उत्तराखंड ''असिस्टेंट निदेशक ;गृह विज्ञान, कृषि विज्ञान केंद्र, नगीना, बिजनौर

बढ़ते हुए प्रदूषण और मिलावट से आज खाद्य वस्तुऐं भी अछूती नहीं रही हैं, दिन प्रतिदिन मिलावट का समावेश होता जा रहा है। इससे बहुत सही बीमारियों तो फैलती ही हैं साथ ही हमारे बाल व युवा वर्ग में कुपोशण के चिन्ह पूर्णरूपेण दिखाई देते है। चेहरे पर कान्ति नहीं, मनोबल की कमी है, जिससे देश का भविष्य अन्धकारमय दृष्टिगोचर होता है, क्योकि आज के युवा वर्ग पर ही देश का भविष्य निर्भर है। शहद में मिलावट के प्रति जागरूक रहना अनिवार्य है। शहद एक मीठा, चिपचिपाहट वाला तरल पदार्थ होता है, जो कि मधुमक्खियों द्वारा पौधों के मकरन्द कोशों से स्त्राव मधुरस या पौधें के अन्य भागों के स्त्राव मधुरस या पौधों के अन्य भागों के स्त्राव से तैयार किया जाता है तथा मौन गृह में आहार के रूप में संग्रह किया जाता है। यह प्रकृति की एक अनमोल देन है। मानव ने जिस मीठे पदार्थ को सबसे पहले जाना और चखा वह शहद ही है। शहद खरीदते समय हमेशा जांच लें, शहद की शुद्धता जांचने हेतु निम्नलिखित संकेत दिये गये हैं -

1. कांच के किसी बर्तन में पानी लेकर उसमें मधु डालें। यदि यह बर्तन की सतह में ऐसे ही पंहुच जाये तो मधु शुद्ध होगा और यदि घुलना शुरू हो जाये तो अशुद्ध होगा।
2. कपास (रूई) की बत्ती बनाकर उसे शहद में डुबोकर जलायें, यदि शहद शुद्ध होगा तो यह जलती रहेगी। अशुद्ध शहद होने पर चटचटाहट की आवाज आयेगी।
3. पानी तथा आयोडीन का 10: 3 अनुपात का घोल बनायें। शहद को पानी में पतला करके इसमें ऊपरलिखित मिश्रण की कुछ बूंदे डालें। यदि रंग न बदले तो शहद शुद्ध होगा। अशुद्ध शहद से लाल या बैंगनी रंग प्राप्त होगा।
4. मधुमक्खी को दो तिहाई शहद में डुबायें तथा इसे उड़ने दें। यदि मधुमक्खी बिना किसी रूकावट के उड़ जाये तो शहद शुद्ध होगा। यह वह नीचे गिर जाती है तो अशुद्ध होगा।
5. शुद्ध शहद को कुत्ता नहीं खाता है।
6. शहद से कागज पर धब्बा नहीं पड़ता है।
7. धातु का कोई बर्तन लें तथा इसकी तह में छेद करें। बर्तन में शहद डालें तथा छेद से निकलने दें। यदि शहद का प्रवाह सर्पिल हो तो शहद शुद्ध होगा अन्यथा नहीं।
8. शहद तथा मेथीलेटिड स्प्रिट की बराबर मात्रा मिलायें तथा अच्छी तरह हिलाएं यदि मधु शुद्ध होगा तो यह सतह में बैठ जायेगा। यदि रंग दूधिया सफेद हो जाये तो अशुद्ध होगा।

9. जमीन पर कुछ शहद डाल दें तथा उसे माचिस से जलायें यदि वह एकदम जल जाये तो शहद शुद्ध होगा।
10. असली शहद पर मक्खियां बैठकर उड़ जाती हैं क्योंकि शहद के तत्व मक्खी के पंखों पर चिपकते नहीं हैं।
11. शहद की कुछ बूंदे सूती कपड़े के टुकड़े पर डालकर जलाने से वह जलने लगता है लेकिन नकली शहद जलते समय शक्कर की गंध छोड़ने लगता है।
12. शुद्ध शहद जाड़े में जम जाता है और गर्मी में पिघल जाता है।

इस प्रकार हम शुद्ध शहद की पहचान कर उसका उपभोग कर सकते हैं। शुद्ध शहद के सेवन से मनुष्य स्वस्थ, बलिष्ठ, निरोग तथा दीर्घजीवी बनता है, और बहुत सी बीमारियों से दूर रहकर स्वस्थ व तन्दरूस्त रह सकते हैं।

सूकर पालन एक लाभकारी उद्यम

डॉ० उमेश कुमार शुक्ल
सहायक प्राध्यापक (वरिष्ठ)
पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान
म. गा. चि. ग्रा. वि. वि. चित्रकूट, सतना, म. प्र.

सूकर पालन कम कीमत पर में कम समय में अधिक आय देने वाला व्यवसाय हैं, जो युवक या किसान पशु पालन को व्यवसाय के रूप में कर रह है उनमें एक पशु सूकर है जो आय की दृष्टि से बहुत लाभदायक हैंए क्योंकि सूकर का मांस प्राप्त करने के लिए ही पाला जाता हैं। इस पशु को पालने का लाभ यह है कि एक तो सूकर एक ही बार में से 14 बच्चे देने की क्षमता वाला एकमात्र पशु है, जिनसे मांस अधिक प्राप्त होता है इसके मांस में प्रोटीन होने की वजह से इसके मांस की मांग अधिक है। सुअर के मांस को निर्यात कर भी अच्छी आमदनी की जा सकती है। दूसरा इस पशु में अन्य पशुओं की तुलना में साधारण आहार को मांस में परिवर्तित करने की अत्यधिक क्षमता होती है, जिस कारण रोजगार की दृष्टि से यह पशु लाभदायक सिद्ध होता है। सूकर का मांस भोजन के रूप में खाने के अलावा इस पशु का प्रत्येक अंग किसी न किसी रूप में उपयोगी है। सूकर की चर्बी, पोर्क, त्वचा, बाल और हड्डियों से विलासिता के सामान तैयार किये जाते हैं। बशर्ते इस व्यवसाय को आधुनिक एवं वैज्ञानिक पद्धतियों के साथ अपनाया जाये।यह व्यवसाय किसानों को रोजगार का एक अवसर देता है इसलिए हम कह सकते हैं कि यह किसानों के लिए फायदे का सौदा है।

सरकार ने भी सुकर पालन से संबंधित प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये गये है। जिससे लोगों का रूझान इस व्यवसाय की तरफ बढ़ता जा रहा है, सूकर को खरीदने व बेचने के लिए समय.समय पर विभिन्नि क्षेत्रों में बाजार भी लगाये जाते है, सूकर मेलों का आयोजन किया जाता है, जहां उचित मूल्य पर सूकरों का क्रय. विक्रय होता है और सूकर के रोगों की रोकथाम के लिए टीके व कीटनाशक दवाएं दी जाती हैं।

सूकर आवास

सूकर पालन के लिए घर बनाते समय सर्दी, गर्मी, वर्षा, नमी व सूखे आदि से बचाव का ध्यान रखना चाहिए। सूकरों के घर के साथ ही बाड़े भी बनाने चाहिए। ताकि सूकर बाड़े में घूम.फिर सकें। बाड़े में कुछ छायादार वृक्ष भी होने चाहिए, जिससे अधिक गर्मी के मौसम में सूकर वृक्षों की छाया में आराम कर सकें। सूकरों के घर की छत ढलवां होनी चाहिए और घर में रोशनी व पानी के लिए खुला बनाते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि खुरली गोलाई में हो ताकि राशन आसानी से खाया जा सके। सूकरों के घर का फर्श समय.समय पर साफ करते रहना चाहिए। मादा सूकर वर्ष में दो से तीन बार बच्चे देती हैं, सामान्यतया मादा 112 से 116 दिन गर्भावस्था में रहती हैं इस अवस्था में तो विशेष सावधानी की जरूरत नहीं पड़ती, लेकिन ब्याने से एक महीना पूर्व मादा को प्रतिदिन तीन किलोग्राम खुराक दी जाती

है, ताकि मादा की बढ़ती हुई जरूरत को पूरा किया जा सके।

पूर्व के राज्यों में सूकर पालन अधिक होता है। इसके अलावा देश के कई राज्यों में सूकर पालन किया जाता है।

सूकर पालन की शुरुआत कैसे करें

इस व्यवसाय की शुरुआत करने से पहले आवश्यक है कि इसकी पूरी जानकारी हो। इस व्यवसाय में आने वाले खर्च, स्थान का चुनाव, सुअर की नश्लों का ज्ञान, व्यापार के जोखिम, पशुओं की बीमारी व बाजार का सही ज्ञान होना आवश्यक है। सूकर का मांस अच्छी गुणवत्तायुक्त प्रोटीन और पोषक मांस के रूप में जाना जाता है इसलिए भारत के साथ इसकी अन्य देशों में भी मांग है।अच्छी आय के नजरिए से इसके पालन से जल्दी ही 6 से 8 महीनों में अच्छी आमदनी होनी शुरू हो जाती है। सूकर के मांस का प्रयोग कैमिकल्स के रूप में जैसे सौन्दर्य प्रसाधन व रासायनिक उत्पादों में प्रयोग होने की वजह से इसकी बहुत मांग है। अधिकतर ऐसा खाना जिसको बेकार समझकर फेंक दिया जाता है, सुअर पालन के जरिए इस खाने को पोषित मांस के रूप में प्राप्त किया जा सकता है। मादा सूकर एक बार में 10 से 12 बच्चों को जन्म देती है। मादा साल में तीन बार बच्चों को जन्म देती है।इस व्यवसाय में इनके रहने के स्थान और अन्य सामग्री पर कम निवेश की आवश्यकता होती है।

सूकर पालन में आने वाला व्यय

सुअर पालन की शुरुआत करते समय मुख्य रूप से रहने की व्यवस्था, मजदुर, कर्मचारी, भोजन सामग्री, प्रजनन और दवाओं पर खर्च होता है। यदि देखा जाए तो पहले सालाना खर्च लगभग 2,80,000 रूपए आता है। दूसरे साल में इनके प्रजनन और बच्चों पर आने वाला खर्च लगभग 3,00,000 रूपए के आस.पास आता है। इसके अलावा पहले साल का लाभ लगभग 21,200 रूपए, दूसरे साल का लाभ 7,80,000 रूपए और तीसरे साल 16,50,000 रूपए होता है। आने वाले वर्षों में यह आय इसी क्रम में बढ़ती जाती है। आने वाले खर्च के विपरीत किसान इस व्यवसाय से एक अच्छी आय आर्जित सकते हैं।

सुअर पालन प्रशिक्षण संस्थान

सुअर पालन व्यवसाय करने के पहले उसका प्रशिक्षण लेना आवश्यक है जिससे कि यदि कोई समस्या आती है तो व्यवसायी उससे स्वयं निपटने की क्षमता रखे। सुअर पालन का प्रशिक्षण देने वाले कई संस्थान हैं। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद के राष्ट्रीय शूकर अनुसन्धान केंद्रए पशु चिकित्सा विद्यालयों एवं कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा किसानों को समय.समय पर सुअर पालन का प्रशिक्षण दिया जाता है। आचार्य एनजी रंगाराव कृषि विश्वविद्यालय, एआईसीआरपी आंध्र प्रदेश, आनंद कृषि विश्वविद्यालय, एआईसीआरपी जबलपुर और आईवीआरआई इज्जतनगर आदि संस्थानों में शोधकार्य होता है।

सब्जियों में समेकित कीट प्रबन्धन

डॉ. राहुल कुमार सिंह, डॉ. वी.पी. सिंह, ए.के. सिंह, डॉ. एस.पी. उपाध्याय, डॉ. ए.के. श्रीवास्तव, डॉ. श्वेता सिंह एवं यश कुमार सिंह
महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केंद्र,चैकमाफी, पीपीगंज, गोरखपुर

पौधो को स्वस्थ्य बनाये रखने वाले मित्र जीवाणुओं, फफूँदों तथा कीटों की संख्या में लगातार कमी होती जा रही है। यही नहीं हानिकारक जीवों में इन रासायनों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता भी उत्पन्न होती जा रही है जिससे मिलने वाला प्रतिफल भी घटने लगा है। इसलिए किसान भाइयों को सजग रहते हुए सब्जियों का उत्पादन बढ़ाने के लिए समेकित कीट प्रबन्धन को अपनाने की आवश्यकता है ताकि मित्र परभक्षी कीटों की संख्या एवं पर्यावरण की स्वच्छता पर बुरा प्रभाव न पड़े और उत्पादित सब्जी विषमुक्त होने के साथ आर्थिक दृष्टि से भी सस्ता हो।

1. सफाई एवं फसल तथा खरपतवार के अवशेषों को नष्ट करना

फसल समाप्ति या कटाई हो जाने के बाद उनके अवशेषों को खेतों में ही छोड़ दिया जाता है जो कि उनमें पल रहे कीटों को सुरक्षा प्रदान करते हैं, इसके साथ ही यदि खेतों के आस-पास खरपतवार लगे रहते हैं तो बहुत से कीट फसल कट जाने के बाद उन्हीं में अपना जीवन निर्वाह करते हैं। अतः फसल के अवशेषों तथा खरपतवारों को नष्ट कर देने से आगे बोयी जाने वाली फसलों में कुछ कीटों जैसे- बेधक सूड़ियों, माँहू इत्यादि के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

2. ग्रीष्मकालीन भूमि की जुताई

गर्मी के मौसम में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए ताकि निष्क्रिय पड़े कीटों के अण्डे, सूड़ियाँ व कृमिकोश धूप द्वारा नष्ट हो जाय। ग्रीष्मकालीन जुताई से श्वेत गिडार, हेयरी कैटरपिलर, कद्दू के लाल कीड़ों, फलमक्खी तथा कटुआ कीटों को नष्ट किया जा सकता है।

3. फसल चक्र अपनाएं

एक ही फसल अथवा उसी समुदाय की फसलों को लगातार एक ही स्थान अथवा क्षेत्र में बोते रहने से, निरन्तर भोजन मिलते रहने के कारण उनमें लगने वाले कीटों का प्रकोप प्रायः बढ़ता ही जाता है यदि शाकभाजी फसलों को हेर-फेर कर उगाया जाय तो कीटों का जीवन चक्र प्रभावित होकर टूट जाता है और अगली फसल में कीटों के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

4. सब्जियों की बुवाई तथा पौध रोपड़ के समय में थोड़ा परिवर्तन करके

ऐसा करके फसलों को कीटों से काफी हद तक बचाया जा सकता है जैसे- सितम्बर में लगायी गयी बैगन की फसल में जुलाई एवं अगस्त में लगायी जाने वाली फसल की अपेक्षा फल एवं तना बेधक कीट का प्रकोप कम होता है। करेले की अक्टूबर से पहले फूल लगने वाली प्रजाति का चयन कर

फलमक्खी से तथा कद्दू वर्गीय सब्जियों की बुवाई नवम्बर में करके लाल कीट के प्रकोप से बचाया जा सकता है। जून के दूसरे सप्ताह में भिण्डी की बुवाई करने पर फल वेधक कीट से क्षति को कम किया जा सकता है।

5. कीट अवरोधी एवं सहनशील प्रजातियों का चयन करके

यह समेकित कीट प्रबंधन रणनीति का प्रमुख हिस्सा है, इसके प्रयोग से रासायनिक दवाओं की खपत को काफी हद तक कम किया जा सकता है तथा पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है। यह विधि सबसे सरल, सस्ती और दुष्प्रभाव रहित है।

फलस	कीट	अवरोधी/ सहनशील प्रजातियाँ
फूल गोभी	हीरक पृष्ठ कीट	नरेन्द्र गोभी-1, पूसा हाइब्रिड-2, अर्ली पटना, काठमांडू लोकल
पातगोभी	माहूँ, पत्ती भक्षक सूंडी	पूसा ड्रम हेड, रेड ड्रम हेड, सुधा, सुमित्रा, सुवर्णा, एक्स प्रेस मेल
बैगन	प्ररोह एवं फल छेदक	नरेन्द्र बैगन-1 व 2, पंजाब बरसाती, पूसा परपिल राउण्ड, पूसा क्रांति, पंजाब नीलम, अर्का कुस्माक
टमाटर	फल बेधक	नरेन्द्र टमाटर-1, 2, 5 व 6, संेचुरी-12, अर्का वरदान, पूसा हाइब्रिड-1, 2 व 4, कृष्णा, वैशाली, अरूणा
प्याज	थ्रिप्स	अर्का प्रगति, अर्का निकेतन, पूसा रेड, पूसा रतनार, बाबी
लहसुन	थ्रिप्स	जी-282, जी-1, एग्रीफाउन्ड ह्नाइट
सब्जी मटर	फली वेधक एवं पत्ती वेधक	नरेन्द्र सब्जी मटर-1, 4 व 5, आजाद मटर-3
भिण्डी	हरा फुदका, धब्बेदार सूड़ी, सफेद मक्खी, तना एवं फलछेदक कीट	वर्षा, विजय, तारा, अभय, अर्का, अनामिका, पंजाब पदमिनी
कद्दू	फलमक्खी, लाल कीट	नरेन्द्र अम्रित, नरेन्द्र अग्रीम, अर्का सूर्यमुखी
लौकी	फलमक्खी लाल कीट	नरेन्द्र संकर लौकी-4, नरेन्द्र रश्मि, नरेन्द्र शिशिर, नरेन्द्र धारीदार, पंजाब कोमल
करेला	फलमक्खी, लाल कीट	हिसार-2, अर्का हरित, प्रिया, पूसा विषेश
टिण्डा	फलमक्खी	हिसार सेलेक्सन, अर्का टिण्डा
आलू	माहूँ, कंद शलभ	कुफरी अशोका, कुफरी सूर्या, कुफरी पुष्कर, कुफरी पुखराज, कुफरी सतलज, कुफरी आनन्द

6. अन्तः फसल उगाना

अन्तः फसल उगाने से एक ही प्रकार के पौधों की दूरी आपस में दूर हो जाती है, अतः कीट एक पौधे से दूसरे पौधों में आसानी से नहीं पहुँच पाते तथा साथ ही साथ फसलों द्वारा छोड़े जाने वाले जैव रसायनों से कीट का प्रकोप कम हो जाता है। जैसे- बन्दगोभी, फूलगोभी के साथ टमाटर, बन्दगोभी के साथ गाजर लगाने से डायमण्ड ब्लैक माथ कीट का तथा राजमा के साथ बन्दगोभी लगाने से फलमक्खी कीट के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

7. जन्तुओं एवं पक्षियों का प्रयोग

खेत में टी (T) के आकार की डण्डियाँ लगाकार कौआ, बगुला, हुदहुद, तीतर, बटेर, उल्लू, भुजंगा, कोयल, गौरैया, मैना, नीलकण्ठ आदि का सरंक्षण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त लेडी बर्ड बीटल, मकड़ियाँ, गिरगिट, मिडोग्रास हापर एवं परभक्षी बग हानिकारक कीटों के अण्डों एवं सूडियो को खाकर उनकी संख्या को कम करते हैं।

8. यौन सम्मोहन पिंजरों का प्रयोग

नाशीकीटों के वयस्क (प्रौढ़) फसल में दूर-दूर तक बिखरे रहते हैं। यौन सम्मोहन (कामगंध फेरोमोन) रसायनों का प्रयोग करके फसलों को नुकसान पहुॅचाने वाली सूड़ियों के नर कीटों को पकड़कर नष्ट किया जा सकता है, इसके लिए कीटों के अतिक्रमण की चेतावनी के लिए 8-10 तक नियंत्रण के लिए 12-15 यौन सम्महोन पिंजरों (ट्रैप) का प्रयोग प्रति हेक्टेयर किया जाता है जैसे- फूलगोभी, टमाटर में लगने वाली तम्बाकू की सूड़ी, भिण्डी में लगने वाले फल छेदक कीट एवं अन्य सब्जियों के फलमक्खी कीट को नियंत्रित किया जा सकता है।

9. कीटों को आकर्षित करने वाली फसल उगाना

कुछ फसलों पर मुख्य फसल की अपेक्षा कीटों का आक्रमण अधिक होता है यदि इन फसलों को मुख्य फसल के साथ उगाया जाय तो कीटों के प्रकोप को कम किया जा सकता है। जैसे-गोभी की 25 पंक्ति के बाद सरसों की बुवाई करके डायमण्ड ब्लैक माथ तथा माॅंहू पर नियंत्रण किया जा सकता है, इसी प्रकार टमाटर की 14 लाइन के बाद दो लाइन गेंदा लगाकर फल बेधक कीट तथा पर्ण सुरंगक कीट के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

10. याँत्रिक एवं भौतिक नियंत्रण

इस विधि में कीटों से प्रभावित शाकभाजी पौधों के भाग को तोड़कर, फल एवं अण्डों के समूहों (बैगन व भिण्डी के फलछेदक कीट) को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त हस्त जालों द्वारा, बाड़ लगाकर, खाई खोदकर तथा प्रकाष प्रपंच या चिपचिपे प्रपंच का प्रयोग करके कीटों को पकड़कर नष्ट किया जा सकता है।

11. **जैविक कीटनाशक का प्रयोग करे**

इसके अन्तर्गत मित्र कीट एवं सूक्ष्मजीव (कवक, बैक्टीरिया एवं वायरस) आते है। इनका प्रयोग करके कीटों की विभिन्न अवस्थाओं को क्षति पहुँचाकर या महामारी की तरह कीटों में बीमारियों उत्पन्न करके प्रभावशाली नियंत्रण किया जा सकता है। इसके प्रयोग से फसल, पर्यावरण, जानवरों, मधुमक्खी, स्तनधारी एवं फसलों के हानिकारक कीटों के प्राकृतिक शत्रु कीटों व अन्य लाभदायक कीटों पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है।

12. **वानस्पतिक कीटनाशी का प्रयोग**

वानस्पतिक आधारित उत्पाद पर्यावरण, मनुष्यों, पशुओं, मित्र कीटों एवं मृदा के लिए सुरक्षित, हानिरहित तथा हानिकारक कीटों को मारने के लिए अथवा मुख्य फसल से दूर भगाने के लिए प्रभावशाली रसायन है, जैसे- नीम का तेल, नीम बीज का अर्क 5 प्रतिशत + साबुन के 1 प्रतिशत या नीम पर आधारित पदार्थ 'नीमार्क' 'अचूक', 'निम्बेसिडिन', नीमगार्ड' इत्यादि के घोल का छिड़काव करने से सब्जियों के तना एवं फल वेधक, डायमण्ड ब्लैक माँथ, माँहू, पर्ण सुरंगक कीटों का नियंत्रण हो जाता है।

13. **रासायनिक कीटनाशी का प्रयोग**

यदि उपर्युक्त विधियों को अपनाने के बाद भी नाशीकीटों का नियंत्रण आर्थिक हानि स्तर से नीचे नहीं हो पाता है तो मृदा, पर्यावरण एवं स्वाथ्य के लिए सुरक्षित रसायनों का प्रयोग कीटों की रोकथाम के लिए करना चाहिए। जैसे- तना एवं फलवेधक कीट, डायमण्ड ब्लैक मॉथ की रोकथाम के लिए फेनवलरेट (1 ली./हे.) या मोनोक्रोटोफाॅस (1 ली./हे.) या साइपरमेथ्रिन (1/2 ली./हे.), एपीलैकना बीटल के लिए कार्बाराइल (2 किग्रा./हे.) प्रयोग करना चाहिए।

बकरियों के प्रमुख रोग एवं उनकी रोकथाम

डॉ. विवेक प्रताप सिंह, श्री अवनीश कुमार सिंह, डॉ० संदीप प्रकाश उपाध्याय, डॉ० राहुल कुमार सिंह, डॉ० अजीत कुमार श्रीवास्तव, श्रीमती श्वेता सिंह तथा यश कुमार सिंह
महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केंद्र,चैकमाफी, पीपीगंज, गोरखपुर

बकरी पालन सीमान्त एवं लघु कृषक तथा बेरोजगारों की आय का एक मुख्य स्रोत है। बकरी पालन एक व्यवसाय का रूप ले रहा हैं, लेकिन बकारी, खासकर उसके बच्चों में मृत्युदर अधिक होने के कारण किसानांे को इससे अपेक्षित लाभ नहीं मिल पा रहा है। जबकि यह एक अति लाभकारी व्यवसाय हो सकता है। मृत्युदर अधिक होने के कारण विभिन्न प्रकार के बीमारियों का प्रकोप है। अतः बकरी पालकों तथा बकरी पालन को एक लाभकरी व्यवसाय के रूप में अपनाने हेतु इच्छूक व्यक्तियों को बकरियों में होने वाले रोग, उनके लक्षण तथा रोकथाम के विषय में जानना जरूरी है।

बकरियों में होने वाले प्रमुख रोग:

बकरी तथा उनके बच्चों में मुख्य रोग से निम्नलिखित बीमारियाँ पायी जाती है -

1. परजीवी रोग
2. सर्दी-जुकाम (न्यूमोनिया)
3. पतला दस्त (छेरा रोग)
4. आंत ज्वर (इण्टेरोटोक्सिमिया)
5. खुजली (खस्सु)
6. कण्टेजियस इकजाईमा
7. जोन्स रोग
8. पेट फूलना

उपरोक्त बीमारियों के अतिरिक्त कभी-कभी चेचक, खुरहा, थनैल एवं कोकसिडिओनसिस भी हो सकता है।

परजीवी रोग:

बकरियों में परजीवी के कारण अधिक रोग होता हैं तथा इससे काफी क्षति पहुँचती है। आन्तरिक परजीवी (गोल कृमि, फीता कृमि, फ्लूक, एमफिस्टोम एवं प्रोटोजोआ) से अत्यधिक हानि होती है। इसके प्रकोप से उत्पादन में कमी, शारीरिक वजन में कम वृद्धि, पतला दस्त तथा शरीर में खून की कमी हो

सकता है। शरीर पर बाल (रोआँ) तथा चमड़ा रूखा-रूखा दिखता है। कभी-कभी परजीवी के कारण पेट भी फूल सकता है तथा जबड़े के नीचे हल्का सूजन भी हो सकता है।

बचाव: आन्तरिक परजीवी के आक्रमण से बचाव हेतु नियमित रूप से कृमि नाशक दवा (नीलवर्म, पानाक्योर, वेनमीन्थ, डिस्टोडीन, वल्वाजेन, पानाक्योर आदि) पशु चिकित्सक की सलाह से उचित मात्रा में देनी चाहिए। यह दवा हर तीन महीने के अन्तराल पर, खासकर वर्षा ऋतु के प्रारम्भ तथा बाद में प्रत्येक बकरी तथा 2 माह की उम्र से अधिक उम्र के बच्चों को देना चाहिए।

आन्तरिक परजीवी के अतिरिक्त वाह्य परजीवी से भी बकरी को बहुत हानि होती है। बकरी के बच्चों तथा व्यस्क बकरा-बकरी को जूँ हो सकता है। मालाथिआॅन या साइथिऑन का प्रयोग कर जूँ से छुटकारा पाया जा सकता है। जूँ के अलावे वाह्य परजीवी की कारण खुजली (खस्सू) की बीमारी होती है, जिससे काफी क्षति पहुँचती है। बकरी तथा उसके बच्चों को खुजली से बचाने के लिए प्रत्येक तीन महीने के अन्तराल पर 0.25 प्रतिशत (1 लीटर पानी में 5 मिली लीटर दवा) मालाथिऑन या साइथिऑन का घोल बनाकर सभी बकरियों तथा उसके बच्चों को नहलाना चाहिए। मालाथिऑन एवं साइथिऑन काफी जहरीला है। अतः इन दवाओं का प्रयोग सावधानीपूर्वक करना जरूरी है। जिस बकरी या बच्चे को खुजली की बीमारी हो उसे पहले खुजली वाले जगह पर सेभलॉन या कपड़ा साफ करने वाला साबुन से अच्छी तरह साफ करना चाहिए। उसके बाद जहर स्नान पहले बताये हुए तरीके से करें। स्नान कराते समय खुजली वाले स्थान पर प्लास्टिक के ब्रस से अच्छी तरह रगड़-रगड़ कर साफ करें। दवा जहरीली है अतः ध्यान रखें की बकरी दवा का घोल नहीं पी ले। नहलाने के एक घंटा के बाद खुजली वाले जगह पर करंज को तेल लगाना चाहिए। खुजली ठीक हो जायेगी। जिस दिन सभी बकरियों को जहर स्नान कराया जाय उसी दिन बकरियों को आवास में सभी दवा के 2 घोल (1 लीटर पानी में 40 मिली लीटर दवा) का छिड़काव करना भी जरूरी है दवा का व्यवहार करने के बाद अपना हाथ-पाँव अच्छी तरह साबनु लगाकर धो लें तथा जिस बतर्न में दवा का घोल तैयार किया जाय उसे भी बार-बार पानी से साफ कर दें।

सर्दी-जुकाम (न्यूमोनिया):

प्रायः देखा जाता है कि बच्चों में यह रोग बहुत होता है तथा काफी बच्चे इस रोग के कारण धीरे-धीरे कमजोर होकर मर जाते हैं। यह रोग बरसात में बच्चों को बार-बार भीगने से तथा जाड़ा में ठंढ से बचाना चाहिए। यह रोग कीटाणु, ठंढा लगने, बरसात में बार-बार भीगने तथा प्रतिकूल वातावरण के कारण हो

सकता है। इस रोग से पीड़ित बकरी तथा उसके बच्चों को बुखार रहता है, सांस लेने में तकलीफ होती है एवं नाक से पानी या नेटा निकलता रहता है। कभी-कभी न्यूमोनिया के साथ-साथ दस्त भी हो जाता है। इस रोग से ग्रसित बकरी तथा उसके बच्चों को ठंढ से बचायें तथा पशु चिकित्सक की सलाह पर बाजार में उपलब्ध उचित एण्टिबायोटिक दवा (ऑक्सीटेट्रासाइकिन) डाइकिस्टीसीन, जेण्टामसइसीन, इनरोफ्लोक्सासीन, सल्फा आदि) दे समय रहते उपचार करने पर बीमारी ठीक हो जायेगी।

पतला दस्त (छेरा रोग):

यह खासकर आन्तरिक परजीवी (कृमि), अधिक मात्रा में हरा चारा खाने तथा कीटाणु (बैक्टेरिया या वाइरस) के कारण होता है। इसमें बार-बार पतला दस्त होता है। खून तथा आंव मिला हुआ दस्त भी हो सकता है। इस बीमारी से पीड़ित पशु को सर्वप्रथम दस्त निरोधक दवा (सल्फा, मेट्रानिडाजॉल युक्त दवा, फेजॉल, ओरीप्रीम, केओलिन, नेवलॉन आदि) का व्यवहार कर दस्त को रोकना जरूरी है। दस्त वाले पशु को पानी में गुड़ या चीनी तथा नमक मिलाकर पिलाते रहना चाहिए। जरूरत पड़ने पर नस द्वारा शरीर में डेक्ट्रोज युक्त पानी भी चढ़ाना पड़ सकता है। पतला दस्त ठीक होने यानी भेनाड़ी आ जाने के बाद मल की जाँच कराकर उचित कृमि नाशक दवा देनी चाहिए। नियमित रूप से कृमि नाशक दवा देने से पतला दस्त की बीमारी का प्रकोप कम होता है।

कण्टेजियस इकजाईमा:

इस बीमारी से ग्रसित बकरी के बच्चों के होठो पर तथा दोनों जबड़ो के बीच छाले पड़ जाते हैं जो कुछ दिनों के बाद सूख जाते है तथा पपड़ी पड़ जाती है यह संक्रमक है यानी एक से दूसरे के बीच काफी तेजी से फैलता है। रोगग्रस्त पशु को अलग रखें तथा होठों के लाल पोटैश (पोटैशियम परमेगनेट) के घोल से साफ कर बोरोग्लिसरीन का मलहम लगायें। बोरिक पाउडर को नारियल तेल में मिलाकर लगाने से भी लाभ होता है। इस रोग का अधिक प्रकोप होने पर बच्चे को खाने में तकलीफ होती है। अतः बच्चों को दूध अधिक मात्रा में पीने दें तथा दाना मिश्रण को उबालकर घट्टा तैयार कर उन्हें खाने को दें।

जोन्स रोग:

पतला दस्त का बार-बार होना, बदबूदार दस्त होना , शरीरिक वजन मंे दिन-प्रतिदिन कमी होना इस बीमारी की पहचान है। इस रोग से ग्रसित पशु को अलग रखें। अगर स्वास्थ्य में गिरावट कम हुई हो तो बकरा-बकरी का व्यवहार मांस के लिए किया जा सकता है, अन्यथा मरने के बाद इसे जमीन को काफी

मात्रा में चूना देकर गाड़ दें ताकि बीमारी फैले नहीं। जिस घर में इस रोग से ग्रसित बकरी-बकरा रखा जाय उसकी अच्छी तरह सफाई कर दें। इस बीमारी का उचित उपचार विकसित नहीं है ।

आंत ज्वर (इण्टेरोटोक्सिमिया):

इस बीमारी में खाने की रूचि कम हो जाती है । पेट में दर्द भी होता है तथा दांत पीसना भी सम्भव है । पतला दस्त भी हो सकता है तथा पतला दस्त के साथ खून भी निकल सकता है । दस्त होने पर नमक तथा चीनी या गुड़ मिला हुआ पानी पीने दे एण्टीबायोटिक एवं सल्फा दवा का प्रयागे करें इस बीमारी से बचाव हेतु इण्टेरोटोक्सिमिया या एम. सी. सी. का टीका बरसात शुरू होने के पहले लगाना चाहिए ।

पेट-फूलना:

इस बीमारी में पशु खाना छोड़ देता है । पेट फूल जाता है तथा पेट को बजाने पर ढोल के जैसी आवाज निकलती है । इस बीमारी में टिमपालॅ पाउडर 15-20 गा्रम पानी मंे सानकर 3-3 घंटे पर खिलायें बाजार मंे उपलब्ध ब्लोरोसील दवा भी पिला सकते हैं एविल भी दे सकते है अगर दवा घर में उपलब्ध नहीं हो तो तीसी के तेल में हींग मिलाकर भी पिला सकते हैं कभी-कभी इन्जेक्शन देने वाली सूई को पटे में भेाक कर गैस निकालने की भी जरूरत पड़ सकती है बीमारी की स्थिति में पशु चिकित्सक की सलाह पर उचित दवा का व्यवहार करें । बकरी तथा उसके बच्चों के स्वास्थ्य पर ध्यान देने से बकरी पालन से अत्यधिक लाभ प्राप्त हो सकता है ।

मोटे अनाज सेहत का राज

श्रीमती श्वेता सिंह, श्री अवनीश कुमार सिंह, डॉ० संदीप प्रकाश उपाध्याय, डॉ० विवेक प्रताप सिंह, डॉ० राहुल कुमार सिंह, डॉ० अजीत कुमार श्रीवास्तव तथा यश कुमार सिंह
महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र,चैकमाफी, पीपीगंज, गोरखपुर

भारत में 60 के दशक के पहले तक मोटे अनाज कि खेती कि परम्परा थी . हमारे पूर्वज हजारो वर्षो से मोटे अनाज का उत्पादन कर रहे है. मोटा अनाज पोषण का सबसे बेहतरीन जरिया है. मोटा अनाज असाध्य रोगों से बचाव करता है । मगर यह बहुत ही दुःख की बात है की हमने इसका उपयोग कम कर दिया है, किन्तु इसी मोटे अनाज को बाकी दुनिया के लोगो ने अपनाना शुरू कर दिया है । ये अनाज हमारे गेहूं और चावल का विकल्प बन सकते है । 1960 के दशक में हरित क्रांति ने धान और गेहूं की फसल को बढ़ावा दिया लेकिन मोटे अनाजों से पल्ला झाड़ लिया। बढ़ते तापमान, मानसून के बदलते चक्र और चरम मौसमी घटनाओ के कारण खाद्यान्न सुरक्षा के लिए खतरा बढ़ रहा है. चावल कि तुलना में रागी,मक्का,बाजरा,और ज्वार कि फसले जलवायु परिवर्तन के प्रति कम संवेदनशील होती है. चरम जलवायु परिस्थितियों के कारण मोटे अनाजो के उत्पादन में मामूली कमी हो सकती है. मोटे अनाज कि फसले बारिश पर निर्भर करती है और खरीफ के मौसम में इनकी खेती की जाती है. वर्त्तमान में कुल वार्षिक अनाज उत्पादन में चावल का हिस्सा 44 प्रतिशत है और खरीफ के मौसम में कुल खाद्यान्न उत्पादन में 73 प्रतिशत चावल शामिल रहता है.खरीफ के दौरान शेष 27 प्रतिशत अनाज उत्पादन में मक्का (15%), ज्वार(2.5%), और रागी (1.5%) शामिल है. यह शोध जर्नल एन्वायरमेंटल रिसर्च लेटर्स में प्रकाशित हुआ है.

मोटे अनाज के उत्पादन में पानी कि खपत बहुत कम होती है. ज्वार, बाजरा और रागी कि खेती में धान कि तुलना में 30 प्रतिशत कम पानी कि आवश्यकता होती है. इसकी खेती में यूरिया और दुसरे रसायनों कि जरुरत भी नहीं पड़ती. इसलिए ये पर्यावरण के लिए भी बेहतर है.

इन्ही में से कुछ अनाज जैसे **रागी, बाजऱा और ज्वार** है जिनका विवरण निम्न है -

1. रागी :- रागी मूल रूप से पूर्वी अफ्रीका का अनाज है और भारत में करीब 4,000 सालों से उगाया जा रहा है । प्राचीन सिंधु घाटी सभ्यता के कुछ इलाकों में रागी आहार का एक प्रमुख हिस्सा था। इस मजबूत फसल को मैदानों के साथ-साथ पहाड़ों पर, समुद्र तल से 2,400 मीटर तक की ऊंचाई पर उगाया जाता है । बहुत ही पौष्टिक और आसानी से रखे जा सकने वाले रागी को बच्चों और बुजुर्गों के भोजन के रूप में महत्व दिया जाता है । संस्कृत में रागी को नृत-कोंडक यानी 'नाचते अनाज' के रूप में जाना जाता है ।

रागी को सबसे पौष्टिक अनाजों में से एक माना जाता है । यूनाइटेड स्टेट्स नेशनल एकेडेमिक्स द्वारा प्रकाशित अध्ययन 'द लॉस्ट क्रॉप्स ऑफ

अफ्रीका' (अफ्रीका की लुप्त फसलें) में यहां तक कहा गया है, "यह सबसे पौष्टिक अनाजों में एक है". रागी में कैल्शियम कि मात्रा अन्य अनाजो कि तुलना में ज्यादा होती है. रागी में ऐसा प्रोटीन मौजूद होता है, जिसका पाचन शरीर आसानी से कर लेता है। मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी कई एमिनो एसिड रागी में पाए जाते हैं, जिनकी अधिकांश दूसरे अनाजों में कमी होती है। आहारीय खनिज भी बड़ी मात्रा में पाए जाते हैं, खासकर कैल्शियम जो दूसरे अनाजों के मुकाबले पांच से तीस गुना अधिक मात्रा में पाया जाता है। रागी में फॉस्फोरस और आयरन भी अधिक होता है। हैरत की बात है कि रागी जैसे मोटे अनाज आम तौर पर गेहूं या चावल से सस्ते होते हुए भी उनसे अधिक पौष्टिक हैं।

2. बाजऱा :- दुनिया भर में मोटे अनाज के उत्पादन का 50 फीसदी हिस्सा बाजरे का है, जिसका सबसे बड़ा उत्पादक देश भारत है। बाजरा में विटामिन बी और आयरन, जिंक, पोटैशियम, फॉसफोरस, मैग्नीशियम, कॉपर और मैंगनीज जैसे आहारीय खनिजों की उच्च मात्रा होती है। गेहूं से एलर्जी वाले लोगों के लिए यह एक बहुत अच्छा विकल्प है। यह अनाज चावल और गेहूं से पौष्टिक है और एमिनो एसिड के अच्छे संतुलन के साथ अधिक ऊर्जा देने वाला अनाज है। भारत में हुए एक शोध पर आधारित अध्ययन से पता चला है, कि दालों और बाजरा पर आधारित आहार मानव विकास के लिए गेहूं आधारित आहार से अधिक बेहतर है। अध्ययनों में यह भी पाया गया है कि जब चावल के बदले आंशिक या पूरी तरह बाजरा को आहार में शामिल किया जाता है, तो पौष्टिकता काफी बढ़ जाती है।बाजरा न केवल पाचन क्रिया को दुरुस्त रखने का काम करता है बल्कि ये कई तरह की बीमारियों से भी बचाता है।

3. ज्वार - यह दुनिया में उगाया जाने वाला पांचवां सबसे महत्वपूर्ण अनाज है। ज्वार सबसे गुणकारी खाद्य फसलों में से एक है। यह एक खाद्य फसल के हिसाब से बहुत जल्दी तैयार होता है और फसल उगाने के लिए जरूरी मानवीय तथा मशीनी ऊर्जा की तुलना में सबसे ज्यादा खाद्य ऊर्जा पैदा करता है। जैसे-जैसे दुनिया उस समय की ओर बढ़ रही है, जब भोजन की आपूर्ति बढ़ती हुई आबादी के लिए पर्याप्त नहीं होगी, तब मानव जाति की खुशहाली में इस फसल की अहम भूमिका होगी।

4. जौ- जौ में अन्य अनाजो की अपेक्षा सबसे अच्छा ज्यादा मात्रा में अल्कोहल पाया जाता है. इस कारण यह एक डाईयुरेटिक है. इसलिए उच्च रक्तचाप वालो के लिए यह लाभदायक है. जौ बढे हुए कोलेस्टराल को कम करने में भी सहायक होता है.इसमें रेशे, एंटीओक्सिडेंट, मैग्नीशियम अच्छी मात्रा में होता है.इस कारण कब्ज और मोटापे से परेशान लोगो को जौ का सेवन करना चाहिए.

मोटे अनाजो में पाए जाना वाले तत्वों के पोषक मान

मोटे अनाज के फायदे – मोटे अनाज के फायदे निम्न है –

भविष्य की कृषि का विकल्प : मुख्य कृषिभूमि के घटने के साथ अरबों नए लोगों का पेट कैसे भरा जाए,

अनाज	प्रोटीन प्रतिशत	वासा प्रतिशत	कार्बोहायड्रेट प्रतिशत	फाइबर प्रतिशत	नमी प्रतिशत
मक्का	11.1	3.6	66.3	2.7	14.5
रागी	7.3	1.5	72.4	3.6	12.4
ज्वार	8.4	2.0	72.0	3.0	13.0
बाजरा	6.0	2.4	35.0	2.5	11.2
झंगोरा	12	2.3	67.2	8.2	11.5
कंगनी	7.0	2.5	61.5	4.7	12.0

यह शायद हमारे बाद वाले समय में दुनिया का एक महत्वपूर्ण मुद्दा होगा। जाहिर है कि कम उपजाऊ और अधिक मुश्किल जमीनों पर जबरन खाद्य पदार्थ उपजाए जाएंगे। इसके अलावा, अगर आशंका के अनुरूप 'ग्रीन हाउस इफेक्ट' दुनिया को गरम कर देता है, तो आज की उपजाऊ जमीन जिसे ब्रेड-बास्केट कहा जाता है, उसके बड़े हिस्सों में ज्वार और बाजरा ही पसंदीदा फसल होगी.

पर्यावरण अनुकूल हैं मोटे अनाज : मोटे अनाज की अपेक्षा गेहूं और धान को उगाने में यूरिया का बहुत प्रयोग होता है। यूरिया जब विघटित होता है, तो नाइट्रस ऑक्साइड, नाइट्रेट, अमोनिया और अन्य तत्वों में बदल जाता है। नाइट्रस ऑक्साइड हवा में घुलकर सांस की गंभीर बीमारियां पैदा करती है और एसिड रेन का कारण भी बनती है।

आधा समय और आधे पानी में भी बेहतर उपज: गेंहू और धान की अपेक्षा मोटे आधा समय और अधा पानी लगता है। मोटे अनाज 70-100 दिन में तो गेहूं या चावल 120-150 दिन में तैयार होते हैं। इसी प्रकार मोटे अनाज को 350 -500 मिमी तो गेहूं या चावल को 600-1,200 मिमी पानी की जरूरत होती है।

स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से निपटने में सहायक: मोटे अनाज कई प्रकार की स्वास्थ्य समस्याओं से निपटने में सहायक है जैसे- मधुमेह और मोटापे की समस्या।क्योंकि वे ग्लूटेन मुक्त होते हैं और इनमें ग्लाइसेमिक इंडेक्स कम होता है।(खाद्य पदार्थों में कार्बोहाइड्रेट के एक सापेक्ष स्तर के अनुसार वे रक्त शर्करा के स्तर को प्रभावित करते हैं। मोटे अनाज एंटीऑक्सीडेंट का संपन्न स्रोत है।

आर्थिक सुरक्षा : मोटे अनाजों के उत्पादन हेतु निवेश की कम आवश्यकता होती है, अत: ये किसानों के लिये आय के स्थायी स्रोत साबित हो सकते हैं।

जलवायु अनुकूल: ये कठोर एवं सूखा प्रतिरोधी फसलें हैं जिनका वृद्धि काल (70-100 दिन) गेहूँ या चावल (120-150 दिन) की फसल की तुलना में कम होता है इसके अलावा मोटे अनाजों (350-500मिमी) को गेहूँ या चावल (600-1,200मिमी) की फसल की तुलना में कम जल की आवश्यकता होती है।

मोटे अनाजों की ऊपज को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता:

- **पोषण सुरक्षा:**
    1. मोटे अनाज गेहूँ और चावल की तुलना में सस्ते होने के साथ-साथ उच्च प्रोटीन, फाइबर, विटामिन तथा आयरन आदि की उपस्थिति के चलते पोषण हेतु बेहतर आहार होते हैं।
    2. मोटे अनाजों में कैल्शियम और मैग्नीशियम की प्रचुरता होती है । जैसे- रागी में सभी खाद्यान्नों की तुलना में कैल्शियम की मात्रा सबसे अधिक होती है।
    3. इसमें लोहे की उच्च मात्रा महिलाओं की प्रजनन आयु और शिशुओं में एनीमिया के उच्च प्रसार को रोकने में सक्षम है।
- **जलवायु अनुकूल:**
    1. ये कठोर एवं सूखा प्रतिरोधी फसलें हैं जिनका वृद्धि काल (70-100 दिन) गेहूँ या चावल (120-150 दिन) की फसल की तुलना में कम होता है इसके अलावा मोटे अनाजों (350-500मिमी) को गेहूँ या चावल (600-1,200मिमी) की फसल की तुलना में कम जल की आवश्यकता होती है।

चुनौतियाँ:

- **गेहूँ को वरीयता:**
    1. गेहूँ में ग्लूटेन प्रोटीन विद्यमान होता है जो आटे में पानी मिलाने पर इसे चिपचिपा बनाता है तथा आटे को अधिक गाढ़ा और लोचदार बनाता है। जिसके परिणामस्वरूप रोटियाँ अधिक मुलायम बनती हैं, यह मोटे अनाजों में संभव नहीं है क्योकि ये ग्लूटेन मुक्त होते हैं।
- **प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की मांग में बढ़ोतरी:**
    1. भारत ने अल्ट्रा-प्रोसेस्ड और रेडी-टू-ईट उत्पादों की मांग में उछाल देखा है, जिनमें सोडियम, चीनी, ट्रांस-वसा और यहांॅ तक कि कार्सिनोजेन्स का उच्च स्तर पाया जाता है।
    2. प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के तीव्र विपणन के साथ ग्रामीण आबादी में भी मिल-संसाधित चावल और गेहूंॅ का उपयोग करने की तीव्र इच्छा देखी जा रही है।
- **राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम द्वारा अन्य अनाजों को बढ़ावा:**
    1. वर्ष 2013 से राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम के तहत ग्रामीण भारत के तीन-चौथाई

परिवारों को 5 किलोग्राम गेहूँ या चावल प्रति व्यक्ति प्रतिमाह उपलब्ध कराया जाता है जिसमें 2 रुपए प्रति किलो गेहूँ और 3 रुपए प्रति किलो चावल देने की व्यवस्था की गई है। इस प्रकार यह मोटे अनाजों की मांग में कमी लाता है।

भारतीय पहल:

- **मोटे अनाजों को बढ़ावा:**
  1. अप्रैल 2018 में केंद्रीय कृषि मंत्रालय द्वारा मोटे अनाजों को उनके "उच्च पोषक मूल्य" और "मधुमेह विरोधी गुणों" के कारण "पोषक तत्त्वों" के रूप में घोषित किया गया था।
  2. वर्ष 2018 को नेशनल ईयर ऑफ मिलेट्स (National Year of Millets) के रूप में मनाया गया।
- **MSP में वृद्धि:**
  1. सरकार द्वारा मोटे अनाजों के न्यूनतम समर्थन मूल्य (Minimum Support Price-MSP) को बढ़ाया गया है, जो किसानों को उनकी फसल का अधिक मूल्य प्रदान करती है।
  2. इसके अलावा उपज की बिक्री हेतु एक स्थिर बाज़ार प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली को शामिल किया है।
- **निवेश सहायता:**
  1. सरकार द्वारा किसानों को बीज किट और निवेश लागत उपलब्ध कराई गई है, किसान उत्पादक संगठनों के माध्यम से मूल्य शृंखला का निर्माण किया गया है और मोटे अनाजों की बिक्री को बढ़ावा देने हेतु विपणन क्षमता का समर्थन किया गया है।

अंतर्राष्ट्रीय पहल

- यूनाइटेड नेशन जनरल असेंबली ने 2023 को इंटरनेशनल ईयर ऑफ मिलेट्स' (International Year of Millets) के रूप में मनाने के भारत के प्रस्ताव को स्वीकृति दी है।

आगे की राह:

- जलवायु के साथ सामंजस्य स्थापित करने, छोटी फसल अवधि, कम उपजाऊ मिट्टी, पहाड़ी इलाकों एवं वर्षा की कम मात्रा के साथ उगने की क्षमता को देखते हुए मोटे अनाज़ों की खेती को प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता है।
- मोटे अनाजों की पहुँच गरीबों तक होने के कारण ये सभी आय श्रेणी के लोगों को पोषण प्रदान करने के साथ-साथ वर्षा आधारित कृषि प्रणालियों का जलवायु अनुकूलन के साथ समर्थन करने में एक आवश्यक भूमिका निभा सकते हैं।

अदरक की उन्नतशील खेती

डॉ.अजीत कुमार श्रीवास्तव, श्री अवनीश कुमार सिंह, डॉ० संदीप प्रकाश उपाध्याय, डॉ० विवेक प्रताप सिंह, डॉ० राहुल कुमार सिंह, श्रीमती श्वेता सिंह तथा यश कुमार सिंह
महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र, चौकमाफी, गोरखपुर

अदरक एक मुख्य व्यवसायिक नगदी फसल है जिसको क्षेत्र एवं भाषा अनुसार विभिन्न प्रचलित नामों से जाना जाता है अदरक को शुद्ध फसल के रूप में तथा छायादार स्थानों पर बागवानी वृक्षों के साथ उगाया जा सकता है भारत में उगाई जाने वाली अदरक की गुणवत्ता विश्व में सर्वोत्तम मानी जाती है भारत में सबसे अच्छी अदरक केरल राज्य में पैदा की जाती है जिसको अंतरराष्ट्रीय बाजार में "कोचीन जिंजर" के नाम से जाना जाता है अदरक एक बहुवर्षीय पौधा है इसका वानस्पतिक नाम जिंजीबर आफीसिनेल रोज है तथा यह जिंजीबेरेएसी कुल की सदस्य है।

उपयोग एवं महत्व

अदरक एक ऐसी औषधि एवं मसाला फसल है जो कि भारतवर्ष के प्रत्येक घर में प्रयुक्त होती है उपयोग के साथ-साथ अदरक उत्पादन में भी भारतवर्ष का विश्व में प्रमुख स्थान है तथा एक अनुमान के अनुसार विश्व की लगभग 50% अदरक का उत्पादन भारतवर्ष में ही होता है।

अदरक का प्रयोग प्राचीनकाल से ही मसाले, ताजे सब्जी और औषधि के रूप में प्रयोग होता चला आ रहा है और आगे भी होता रहेगा। इसके प्रयोग से शरीर में रक्त कोलेस्ट्रॉल का स्तर नियंत्रित रहता है। शीतकाल में अदरक का प्रयोग चाय में मुख्य रूप से किया जाता है इसका प्रयोग बदहजमी, सर्दी, जुकाम, खांसी में फायदेमंद रहता है।

अदरक की खेती हेतु भूमि

सामान्यत: सभी प्रकार की भूमियों में इसकी खेती की जा सकती है। लेकिन उचित जलनिकास वाली बलुई दोमट मिट्टी जिसमें जीवांश की अच्छी मात्रा हो, अदरक की खेती लिए उपयुक्त होती है। इसकी अच्छी पैदावार के लिए भूमि का पीएच मान 6.5 से 7.0 के बीच होना चाहिए।

खेत की तैयारी

खेती योग्य भूमि तैयार करने के लिए 1-2 जुताई मिट्टी पलटने और 2-3 जुताई देशी हल से करनी चाहिए। मिट्टी को अच्छी तरह से समतल व भुरभुरी कर लेनी चाहिए। इसी बीच प्रति एकड़ 100 से 150 किलोग्राम नीम की पिसी हुई खली खेत में मिला दी जानी चाहिए जिससे सूत्र कृमियों से सुरक्षा की जा सके।

खाद एवं उर्वरक

अदरक की फसल को अधिक मात्रा में पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है जिसके लिए 25 से 30 टन गोबर की खाद तथा 100 किलोग्राम नत्रजन 50 किलोग्राम फास्फोरस व 50 किलोग्राम पोटाश

की मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में प्रयोग करते हैं गोबर की खाद के अलावा नत्रजन की आधी मात्रा (50 किलोग्राम) फास्फोरस व पोटाश की संपूर्ण मात्रा बुवाई के समय खेत में मिला देते हैं शेष नत्रजन की आधी मात्रा में से आधी (25 किलोग्राम) बुवाई के 35 से 40 दिन बाद पौधों पर मिट्टी चढ़ाते समय व शेष बची (25 किलोग्राम) मात्रा बुवाई के 75 से 90 दिन पश्चात खड़ी फसल में देते हैं।

प्रमुख प्रजातियां

रजता, सुप्रभा, सुरभि, हिमगिरि एवमं हिमा यदि है इसके अलावा समस्तीपुर, बरुआसागर, किसान भाई लोकल प्रजाति का भी चयन खेती हेतु प्रयोग करते हैं।

बुवाई का समय

अदरक के बुवाई का सबसे उपयुक्त समय मध्य अप्रैल से मई तक अच्छा माना जाता हैं। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की उपयुक्त सुविधा हो वहां भी अदरक की बुवाई अप्रैल से जून के बीच कर सकते हैं।

बीज उपचार एवं बोने की विधि

बुवाई हेतु उन्नतशील प्रजाति के स्वस्थ एवं रोग रहित प्रकंद का प्रयोग करना चाहिए प्रकंद को इस प्रकार चाकू से काटे कि उसमें दो से तीन आंखें अवश्य रहे कटे हुए टुकड़ों को कुछ देर तक हवा में खुला छोड़ दे ऐसा करने से कटे हुए भाग पर पपड़ी जम जाती है जिससे कंद के सड़ने की संभावना नहीं रहती है। बुवाई से पूर्व कटे हुए प्रकन्दों को कॉपर ऑक्सिक्लोराइड के 0.3% याडायथेनएम -45 के 0.2 प्रतिशत घोल में 15 मिनट तक डुबोकर छाया में सुखा लेते हैं अदरक की बुवाई मेड़ों पर या समतल क्यारियों में की जाती है। अदरक की बुवाई मेड़ों पर या समतल क्यारियों में की जाती है समतल भूमि में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सेंटीमीटर व कंद से कंद की दूरी 20 सेंटीमीटर रखते हैं जबकि मेडों पर बुवाई पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सेंटीमीटर व कंद से कंद की दूरी 30 सेंटीमीटर रखते हुए की जाती है अदरक की बुवाई मेड़ों पर करने से उपज अधिक मिलती हैं

बीज की मात्रा

अदरक की बुवाई हेतु कंदो के आकार के अनुसार 15-20 कुन्तल/हे. बीज की जरूरत होती है। और बीजों को 5 से 6 सेंटीमीटर की गहराई में बोया जाता हैऔर ऊपर से मिट्टी चढ़ा दी जाती है।

बिछावन या मल्चिंग

अदरक की खेती के लिए दो बिछावन लाभप्रद होते हैं प्रथम बिछावन हरी पत्तियों या घासफूस की पतली परत बिछाकर बुवाई के तुरंत बाद तथा द्वितीय बिछावन गोबर की खाद की पतली परत बिछा कर बुवाई के 35 से 40 दिन बाद करने से फसल की बढ़वार अच्छी होती है तथा खेत में खरपतवार का जमाव भी कम होता है और मृदा में पर्याप्त नमी संरक्षण भी होती है इसके अलावा बिछावन के सड़ने से खेत में जीवांश पदार्थ की मात्रा बढ़ती है जिससे प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

सिंचाई

बुवाई के तुरंत बाद सिंचाई करना आवश्यक है जब अदरक की फसल को वर्षा ऋतु में लिया जाता है तो उस दौरान सिंचाई की विशेष आवश्यकता नहीं होती है परंतु अप्रैल-मई में बोई गई अदरक की फसल में वर्षा होने से पूर्व दो से तीन सिंचाईयो की आवश्यकता होती है अदरक में बुवाई के 80 से 90 दिन बाद प्रकंद बन्ना शुरू हो जाते हैं प्राकंदो के पूर्ण विकास के दौरान खेत में पर्याप्त मात्रा में नमी बनी रहनी चाहिए।

निराई गुड़ाई एवं मिट्टी चढ़ाना

अदरक की फसल में जुलाई से सितंबर के मध्य प्रतिमाह एक से दो निराई गुड़ाई करना आवश्यक होता है तथा साथ ही साथ पौधों पर मिट्टी भी चढ़ाना चाहिए।

खुदाई

बुवाई के लगभग 7 से 8 माह बाद अदरक की फसल खुदाई हेतु तैयार हो जाती है जब दिसंबर जनवरी माह में पौधों की पत्तियां पीली पढ़कर जमीन पर गिरने लगे तो यह समझना चाहिए कि फसल खुदाई हेतु तैयार है प्रकंदो की खुदाई करने के पश्चात गाठों को पानी में धोकर 1 से 2 दिन तक छाया में सुखाना आवश्यक होता है।

पैदावार

अदरक के फसल की अच्छी तरह सिचाई, निराई एव देखभाल समय समय पर की जाए तो 180 से 200 कुंतल/हे. तक पैदावार ली जा सकती है।

छत पर उगाएं सेहतमंद सब्जियां

ओमकार देवगडे

भोजन की थाली में मौजूद हानिकारक रसायनों से ज्यादातर लोग अनभिज्ञ रहते हैं। वजह से खरीदी गई चमकीले और सुंदर फल तथा सब्जियां हम खरीदते तो सेहत के लिए हैं लेकिन कई दफा यह हमारी सेहत से खिलवाड़ का कारण भी बनते हैं। फसलों पर कीड़ों के प्रभाव को कम करने के लिए किसान जहरीले रसायनों का प्रयोग करते हैं। उन्हें इस बात का इल्म नहीं होता की वह जिन फलों को सेहत सुधारने के लिए खा रहे हैं, वही सेहत के लिए लड़ने की वजह बन रहे हैं। इन हालात में लोक अनेक तरह की बीमारियों के शिकार होने लगे हैं। यदि हमें अपने आप को इन बीमारियों से बचाना है तो छोटे छोटे प्रयोग अपनाने होंगे। घर के आंगन एवं छत पर सब्जी उगाने के तरीके इसी कडी के दो अंग हैं। बड़े शहरों, कस्बा व गांव में बहुत लोग ऐसे हैं जिनके पास सब्जियां उगाने के लिए जगह नहीं है। ऐसी हालत में मकान की छत, छज्जा व मकान के चारों ओर की खाली जगह में जैविक तरीके से कुछ मात्रा में सब्जियां तैयार की जा सकती हैं। वह एक ऐसी जगह है जहां हवा और धूप सही मात्रा में मिलती है। छत पर सब्जियां गमलों में उगाई जा सकती हैं। जून के महीने में छत पर लौकी, तुरई, टिंडा, करेला, भिंडी, बैंगन, टमाटर, मटर, ग्वारफली, पालक, मूली, गाजर, जैसी सब्जियां उगाई जा सकती हैं। इस तरह से सब्जियों को बोने से घर के लोगों को कुछ काम भी मिलेगा और घर में दो-तीन दिन जैविक तरीके से सब्जियां भी मिल सकेंगी।

छत पर सब्जी उगाने के लिए मिट्टी सीमेंट और प्लास्टिक के गमले इस्तेमाल किए जा सकते हैं। गमले में मिट्टी भरने की क्षमता 10 किलोग्राम से लेकर ढाई सौ किलोग्राम तक होनी चाहिए। गमलों की गहराई फसल के अनुसार 1 से ढाई सौ तक होनी चाहिए। सब्जी के लिए सीमेंट की नालियों का इस्तेमाल भी

किया जा सकता है। नालियों के नीचे थोड़ी थोड़ी दूरी पर पानी निकासी के छेद होने चाहिए। भारी गमलों को दीवार के ऊपर रखना चाहिए और बेल वाली सब्जियों के गमले दीवार के पास नीचे रखने चाहिए। मध्यम में छोटे आकार के गमले छत के पीछे छज्जे पर रखे जा सकते हैं।अधिक धूप चाहने वाली सब्जियों को छत के दक्षिण दिशा और छाया वाले पौधों को उत्तर दिशा में लगाना चाहिए। सब्जी की नालियां भी दीवार के सहारे घर के दरवाजे और पिछवाड़े की तरफ बनाई जा सकती हैं।

गमलों को भरना

सब्जियों को गमलों में उगाने के लिए पहली प्राथमिकता अच्छी मिट्टी की होती है। उपजाऊ मिट्टी, बालू, वर्मी कंपोस्ट, सड़ी हुई गोबर की खाद, समान मात्रा में गमलों में भरनी चाहिए। गमले की तली में पानी निकलने के लिए बने सुराख के ऊपर कोई पुराना बर्तन का टुकड़ा रखते हैं ताकि अतिरिक्त पानी निकल जाए मिट्टी और बालू रुकी रहे। गमलों में बीज लगाने के बाद अंकुरण के लिए हल्की नमी बनाए रखनी चाहिए। पौध लगाने के बाद हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए

सिंचाई

गमलों में किसी भी तरह के पौधों को लगाने के लिए और उनकी अच्छी बढ़वार के लिए अच्छे पानी की बेहद आवश्यकता रहती है। चतुर घर के आंगन में फुलवारी और सब्जियों की खेती करने वाले लोग यदि बरसात के सीजन में बेकार जाने वाले बरसाती पानी को घर के अंदर किसी टैंक में सुरक्षित

करना है तो वह पूरे साल के लिए उनके किचन गार्डन की संजीवनी का काम करेगा। पौधों में साबुन और

सर्फ वाले पानी का प्रयोग कतई नहीं करना चाहिए।

पौधों की रक्षा

गमलों में लगाई सब्जियों में कई तरह के कीट व बीमारियां नुकसान पहुंचाते हैं। उनका सही समय पर उपचार करना जरूरी है। गमलों को इस्तेमाल में लेने से पहले उन्हें उपचारित करना चाहिए। बस 15 दिन की अंतर पर सब्जियों के पौधों व पेड़ों पर नीम की पत्तियों का रस व गाय के पेशाब का छिड़काव करना चाहिए। पत्तियों में फूलों का रस चूसने वाले कीड़ों से बचने के लिए तंबाकू या नीम की खली का अर्क बनाकर छिड़काव करना चाहिए। यदि कीटों का असर ज्यादा होने लगे तो नींद वाली दवाओं का 7 से 10 दिन के अंतर पर दो-तीन बार छिड़काव करना चाहिए। जड़ गलन व फोटो भी से लगने वाली बीमारियों से बचने के लिए गमले में 5 से 10 ग्राम ट्राइकोडरमा का इस्तेमाल करना चाहिए। बीमारी से ग्रसित पौधों को उखाड़ कर फेंक देना चाहिए। गिलहरी जैसे जीवो से पौधों को बचाने के लिए नायलॉन की जाली से पौधों को सुरक्षित रखना चाहिए। गमलों में लगी सब्जियों को समय-समय पर तोड़ते रहना चाहिए। ऐसा न करने पर उनका उत्पादन प्रभावित होता है। गमलों में हो गई सब्जी कच्ची और ताजी स्थिति में ही उपयोग में ली जानी चाहिए।

जीरो बजट प्राकृतिक खेती

डॉ. अमित कुमार केशरी और डॉ. आशीष कुमार श्रीवास्तव
विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि प्रसार) और विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशुपालन)
कृषि विज्ञान केन्द्र, कौशाम्बी

भारत में हरित क्रांति के नाम पर अंधाधुंध रासायनिक उर्वरको, कीटनाशको, हाइब्रिड बीजो के प्रयोग स्वरुप अधिकाधिक भूजल दोहन से भूमि की उर्वरा शक्ति, उत्पादन, भूजल स्तर और मानव स्वास्थ में निरन्तर गिरावट आयी हैं। किसान बढती लागत एवं बाजार पर निर्भरता के कारण खेती छोर रहा हैं। बाद में आयी विदेशी तकनीक, जैविक खेती, भी जटिल होने के कारण अन्तत: किसान को बाजार पर ही निर्भर बनती हैं अत: आवशकता हैं एसी कृषि पद्धति की जिसमे किसान को बार – बार बाजार न जाना पड़े, उत्पादन न घटे खेत उपजाऊ बने रहे व मानव रोगी न बने। प्राकृतिक खेती में खेत के लिए कुछ भी बाजार से नही खरीदना हैं, सिर्फ एक देसी गाय पालना हैं।

महत्वपूर्ण बाते -

- प्राकृतिक कृषि में देसी या उन्नत बीजो का ही प्रयोग करे।
- प्राकृतिक कृषि में भारतीय नस्ल का गौवंश ही प्रयोग करे।
- पौधा व फसल की पंक्ति की दिशा उत्तर-दक्षिण रखिये।
- फसल बुवाई के बाद खेत में अच्छादन करे।

प्राकृतिक खेती का आधार

प्राकृतिक व्यवस्था – प्रकृति में सभी जीव एवं वनस्पतियों के भोजन की एक स्वावलंबी व्यवस्था हैं

जिसका प्रमाण हैं बिना किसी मानवीय सहायता (खाद, कीट नाशक आदि) के जंगलो में खड़े हरे – भरे पेड़ व उनके साथ रहने वाले करोडो जीव – जन्तु पौधो के पोषण के लिए आवश्यक सभी 16 तत्व प्राकृति में उपलब्ध हैं उन्हें भोजन के रूप में बढ़ने का कार्य मिट्टी में पाये जाने वाले करोड़ो सूक्ष्म जीवाणु करते हैं। इस पद्धति में पौधो को भोजन न देकर भोजन बनाने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं की उपलब्धता पर जोड़ दिया जाता हैं (जीवामृत, घन जीवामृत द्वारा) पौधों के पोषण की प्रकृति में चक्रीय व्यवस्था हैं। पौधो अपने पोषण के लिए मिट्टी से सभी तत्व लेता हैं। फसल पकने के बाद काष्ट पदार्थ के रूप में मिट्टी में मिलकर, अपघटित होकर मिट्टी की उर्वरा शक्ति (ह्यूमस) के रूप में लौटता हैं।

देशी गाय – देसी गाय के गोबर में 300-500 करोड़ उपरोक्त सूक्ष्म जीवाणु होते हैं। गाय के गोबर में गुड़ व अन्य पदार्थ डालकर किण्वन से सूक्ष्म जीवाणु कई गुणा बढ़ाकर तैयार किया जाता हैं। जीवामृत एवं धन जीवामृत जब खेत में पड़ता है तो अरबो सूक्ष्म जीवाणु भूमि में उपलब्ध तत्वों से पौधो का भोजन निर्माण करते हैं।

देशी केचुओ का महत्त्व – केचुआ मिट्टी, बालू पत्थर खाता हुआ 15 फीट की गहराई तक भूमि के नीचे जाता हैं नीचे से पोषक तत्वों को ऊपर लाता हैं तथा पौधो की जड़ के आस पास अपनी विस्टा के रूप में छोरता हैं। जिसमे खनिज तत्वों का भंडार होता हैं। केचुआ भूमि में दिन रात करोडो छिद्र करता हैं क्योंकि केचुआ एक छिद्र का दुबारा उपयोग नही करता परिणाम स्वरुप वह भूमि की जुताई कर मुलायम बनाता हैं तथा इन्ही छिद्रों से पूरा वर्षा जल भूमि में संग्रहित होता हैं।

प्राकृतिक खेती के प्रयोग –

बीजामृत - बीजो को बुआई करने से पहले बीजो को संसोधन करना बहुत जरूरी हैं। इसके लिए बीजामृत बहुत ही उपयोगी हैं। देशी गाय का गोबर-5 कि.ग्रा., देशी गाय का मूत्र-5 ली., चूना या कली-250 ग्रा., पानी-20 ली. और खेत की मिट्टी मुट्ठी भर, इन सभी पदार्थो को पानी में घोलकर 24 घंटे तक रखिये दिन में दो बार लकड़ी से इसे हिलाना हैं। इसके बाद बीजो के ऊपर बीजामृत डालकर उन्हें शुद्ध करना हैं। इसके बाद छाया में सुखाकर फिर बुआई करनी हैं। इससे जड़े तेजी से बढती हैं और बीमारियों से बचे रहते हैं और अच्छी प्रकार से पलते-बढते हैं।

जीवामृत – एक एकड़ जमीन के लिए 10 कि.ग्रा . गोबर के साथ गौमूत्र, गुड़ और दो-दले बीजों का आटा या बेसन आदि मिलाकर प्रयोग में लाने से चमत्कारी परिणाम निकलते हैं। देशी गाय का गोबर 10 कि.ग्रा., देशी गाय का मूत्र 8-10 ली., गुड़ 1-2 कि.ग्रा., बेसन 1-2 कि.ग्रा., पानी 180 ली. और पेड़ के नीचे की मिट्टी 1-2 कि.ग्रा.। उपरोक्त सामग्रियों को प्लास्टिक के एक ड्रम में डालकर लकड़ी के डंडे से घोलते हैं और इस घोल को दो से तीन दिन तक सड़ने के लिए छाया में रख देते हैं। प्रतिदिन दो बार सुभ और शाम घडी की सुई की दिशा में लकड़ी के डंडे से दो मिनट तक इसे घोलते हैं और जीवामृत को बोरे से ढक देना हैं। इसके सरने से अमोनिया, कार्बन डाई ऑक्साइड, मीथेन जैसी हानिकारक गेसो का निर्माण होता हैं।गर्मी के महीने में जीवामृत 7 दिन तक और सर्दी में 8-15 दिन तक उपयोग कर सकते हैं।जीवामृत को महीने में दो बार या एक बार उपलब्धता के अनुसार, 200 ली. प्रति एकर के हिसाब से सिचाई के पानी के साथ देना हैं।

घनजीवामृत - देशी गाय का गोबर 100 कि.ग्रा., गुड़ 1 कि.ग्रा., दलहन का आटा 2 कि.ग्रा., खेत की

मिट्टी मुट्ठीभर और थोडा सा देशी गाय का मूत्र । उपरोक्त सभी पदार्थो को अच्छी तरह से मिलाकर गुथ ले ताकि उसका हलवा, लड्डू जैसा गाढ़ा बन जाए । उसे 2 दिन तक बोरे से ढककर रखे और थोडा पानी छिड़क दे । इस लड्डू को कपास, मिर्च, टमाटर आदि के बीज के साथ भूमि पर रख दे ।उसके ऊपर सुखी घास डाले और उसके ऊपर डिपर से पानी डाले ।गीले घंजीवामृत को छाये में फैलाकर सुखा लें । सूखने के बाद इसको लकड़ी से पीटकर बारीक़ करे व बोरों में भरकर छाया में भण्डारण करे ।फसल की बेवाई के समय प्रति एकर 100 कि.ग्रा. छाना हुआ गोबर खाद और 100 कि.ग्रा. घंजीवामृत मिलाकर बीज बोये । कृषि विज्ञान केन्द्रों पर इसके प्रयोग से अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं ।

अच्छादन – देशी केचुओं को कार्य करने के लिए आवश्यक सूक्ष्म पर्यावरण एवं भूमि की नमी को सुरक्षित करने हेतु भूमि को ढका जाता हैं । सूक्ष्म पर्यावरण का आशय हैं पौधों के बीच हवा का तापमान 25 डिग्री से. से 32 डिग्री से.नमी 65-72 व भूमि सतह पर अधेरा । जब हम अच्छादन करते है तो उपरोक्त पारिस्थिति बनती हैं सूक्ष्म जीवाणु व केचुये अपना कार्य करते हैं बाद में अच्छादन अपघटित होकर उर्वरा शक्ति (ह्यूमस) का निर्माण करता हैं । साथ ही अच्छादन हवा से पानी सोखकर भूमि को उपलब्ध करता हैं ।

बेड नाली व्यवस्था - जड़े सीधे पानी नही लेती व मिट्टी कणों के बीच वाष्प (50% हवा + 50% वाष्प) को लेती हैं उच्चे बेडो पर बुवाई करके नाली में पानी देकर वाष्प के रूप में उपलब्ध करने से पानी बहुत कम लगता हैं । नालियों में अच्छादन कर देने से वाष्पन भी रुक जाता हैं पानी की बचत होती हैं ।

सहयोगी फसले – प्राकृतिक कृषि में मुख्य फसल के साथ सहयोगी फसलो की खेती भी एक साथ की जाती हैं जिससे मुख्य फसल को नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश आदि मिलता रहे । सहयोगी फसलो की जड़ो के पास नाइट्रोजन स्थिरक जीवाणु जैसे राइजोबियम, असोस्पिरिलम, अजोटोबक्टर आदि की मदद से पौधो का विकास होता हैं । प्राकृतिक कृषि में मुख्य फसलो के साथ सहयोगी फसले लगाने से मुख्य फसल पर कीट नियंत्रण भी साथ-साथ होता हैं ।

फसल सुरक्षा

फफूंदी नाशक – 100 ली. पानी में 3 ली खट्टी लस्सी या छाछ मिलाकर फसल पर छिडकाव करे । यह कवक नाशक हैं, सजीवक हैं और विशानुरोधक हैं । बहुत ही बढ़िया कार्य करता हैं ।

रोगनाशी – सभी तरह की बीमारियों में 200 ली. पानी + 15 ली.जीवामृत + 5 ली.खट्टी छाछ मिलाकर लकड़ी से घोलकर 2 घंटे रखे दो घंटे बाद छिड़काव करे ।

कीट रोधक – नीमास्त्र, ब्रह्मास्त्र,अग्नेयास्त्र व दशपरणी अर्क का प्रयोग करे ।

सूअर पालन – एक लाभदायक व्यवसाय

डॉ. अमित कुमार केशरी, विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि प्रसार)
कृषि विज्ञान केन्द्र, कौशाम्बी

सूअर पालन एक ऐसा व्यवसाय है जिससे रोजगार के साथ-साथ अतिरिक्त आर्थिक लाभ भी अर्जित किया जा सकता है। सूअर पालन, भारत में बहुत से लोगों की आमदनी का अच्छा स्त्रोत रहा है, इसलिए सूअर पालन व्यसायिक दृष्टि से भारतीय लोगों के लिए कृषि से जुड़े व्यवसायों में अच्छा एवं लाभदायक विचारों में से एक हो सकता है। माँस उत्पादन की दृष्टि से वैश्विक स्तर पर सूअरों की अनेक अच्छी नस्लें पायी जाती हैं। इनमें से कुछ ऐसी नस्लें है जो भारत के जलवायु के अनुकूल हैं जिनका सूअर पालन के लिए उद्यमी किसी भी अच्छी नस्ल का चयन करके सूअर पालन शुरू कर सकता है। हालांकि, भारत में कुछ वर्ष पहले तक सूअर पालन व्यवसाय को निम्न दृष्टि से देखा जाता था इसलिए समाज में इस व्यवसाय की अच्छी छवि नहीं थी। लेकिन वर्तमान में सम्पूर्ण परिदृश्य बदलता जा रहा है। इसलिए भारत में इस तरह का यह व्यवसाय केवल आर्थिक रूप से किसी एक वर्ग विशेष तक ही सीमित नहीं रह गया है।

सूअर पालन के लाभ- सूअर पालन के कई फायदे हैं। भारत में उत्तर प्रदेश सबसे बड़ा सूअर उत्पादन राज्य है।

- सूअर किसी भी अन्य जानवर की तुलना में तेजी से बढ़ता है। सूअर अन्य जानवरों की तुलना में जल्दी परिपक्व हो जाते हैं। एक मादा सूअर 8- 9 महीनों की उम्र में पहली बार माँ बन सकती है। वे साल में दो बार बच्चे पैदा कर सकते हैं। और प्रत्येक प्रसूति में वे 8-12 बच्चों को जन्म देते हैं।
- सूअरों की फ़ीड रूपांतरण दक्षता बहुत अधिक होती है, तात्पर्य कि उनमें फ़ीड से मांस की रूपांतरण दर बाकी जानवरों की तुलना बहुत बेहतर होता है। वे किसी भी प्रकार के फ़ीड, फोरेज, मिलों से प्राप्त कुछ अनाज उप-उत्पाद, क्षतिग्रस्त फीड्स, मांस के उप-उत्पाद, कचरा आदि को मूल्यवान, पौष्टिक और स्वादिष्ट मांस में बदल सकते हैं। सूअर अनाज, क्षतिग्रस्त भोजन, चारा, फल, सब्जियां, कचरा, गन्ने आदि सहित लगभग सभी प्रकार के भोजन खा सकते हैं। कभी-कभी वे घास और अन्य हरे पौधों या जड़ों को भी खा सकते हैं।
- सूअर कृषि व्यवसाय स्थापित करना आसान है, और इसके लिए घर के निर्माण और उपकरण खरीदने के लिए छोटे पूंजी/निवेश की ही आवश्यकता है।
- कुल उपभोज्य मांस का अनुपात और कुल शरीर का वजन सूअरों में अधिक है। हमें सूअर से लगभग 60 से 80 प्रतिशत उपभोग्य मांस मिल सकता है। सूअर मांस सबसे पौष्टिक और स्वादिष्ट मांस में से एक है। इसमें वसा और ऊर्जा अधिक तथा पानी कम होता है।

- सूअर खाद एक अच्छा और व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाने वाला उर्वरक है। आप इसे खेत में दोनों फसलों के उत्पादन के लिए और तालाब में मछली खेती के उद्देश्य के लिए उपयोग कर सकते हैं।
- सूअर की वसा की पोल्ट्री फीड, पेंट्स, साबुन और रासायनिक उद्योगों में भी भारी मांग है। और यह मांग लगातार बढ़ रही है।
- सूअर मांस की भारत में अच्छी घरेलू मांग है, और उसके अलावा आप विदेशी देशों में बेकन, हैम, लार्ड, पोर्क, सॉस आदि जैसे सूअर उत्पादों का निर्यात करके अच्छी आय भी कमा सकते हैं।
- सूअर कृषि व्यवसाय छोटे और भूमिहीन किसानों, बेरोजगारों, शिक्षित या अशिक्षित युवा लोगों के लिए और ग्रामीण महिलाओं के लिए आय का एक महान अवसर हो सकता है।

सुअर पालन के लिए चारा- सुअर को जौ, मक्का, गेहूं, ज्वार, चावल तथा बाजरा खिला सकते हैं. इसके अलावा इनकी प्रोटीन सप्लीमेंट के तौर पर आइल केक, मीट मील तथा फिश मील को अनाज में मिलाकर खिला सकते हैं.

सुअर पालन के लिए कितना चारा खिलाए- सुअर को उनके वजन के हिसाब से अनाज दिया जाता है. 25 किलोग्राम से 100 किलोग्राम तक सुअर को 2 से 5 किलो तक अनाज खिलाया जाता है. वहीं 100 से 250 किलोग्राम के वयस्क सुअर को 5 से 8.5 किलोग्राम अनाज रोजाना दिया जाता है।

सुअर पालन से कमाई

यदि आप कमर्शियल सुअर पालन करना चाहते हैं, तो 10+1 का फार्मूला अपनाएं. यानी 10 फीमेल और एक मेल सुअर का पालन करें. विदेशी नस्ल का सुअर साल 16 महीनों में दो बच्चों को जन्म देती है. वहीं यह एक बार में 8 से 12 बच्चों को जन्म देती है. यदि 10 मादा सुअर आपके पास है और हर एक ने एक बार में 8 से 10 बच्चों को भी जन्म दिया, तो 16 महीने में यह 160 से 200 बच्चों को जन्म दे देती है. एक वयस्क सुअर लगभग 10 से 15 हजार रूपए में बिकता है. इस लिहाज से आप साल भर में ही खर्च निकालकर 8 से 12 लाख की कमाई कर सकते है।

सूअर के स्टार्टर ,ग्रोअर और फिनिसर आहार

स्टार्टर राशन	ग्रोअर राशन	फिनिशर राशन
मक्का - 60%	मक्का - 64%	मक्का - 60%
खल - 20%	खल - 15%	खल - 10%
चोकर -10%	चोकर -12.5%	चोकर -24.5%
मछली चूर्ण -8%	मछली चूर्ण -6%	मछली चूर्ण -3%
मिनरल मिक्सचर - 1.5%	मिनरल मिक्सचर - 2.5%	मिनरल मिक्सचर - 2.5%
नमक - 0.5%	नमक - 0.5%	नमक - 0.5%

नोट- ग्रोअर सूअर को प्रतिदिन शरीर वजन का 4% या 1.5-2 किलोग्राम दाना आवश्यकतानुसार दें।

सूकर की नस्लें (pig breeds)- हमारे देश में शूकरों की देसी और संकर दोनों नस्लें पाई जाती है । लेकिन, अधिक लाभ और व्यावसायिक उत्पादन के लिए संकर नस्लों का ही चुनाव करें । संकर नस्लों में सफेद यॉर्कशायर, लैंडरेस, हैम्पशायर, ड्युरोक और घुंघरू प्रमुख हैं ।

घुंघरू

यह भारत की देसी नस्ल है । यह भारत में पूर्वोत्तर राज्यों में सबसे अधिक पाई जाती है । इस नस्ल के शावक तेजी से विकास करते हैं । इस नस्ल का रंग काला और चमड़ी मोटी होती है । खासकर बंगाल में इसका पालन किया जाता है । इसकी वृद्धि दर बहुत अच्छी है । क्योंकि इसे पालने के लिए कम से कम प्रयास करने पड़ते हैं और यह प्रचुरता में प्रजनन करता है । सूकर की इस संकर नस्ल/प्रजाति से उच्च गुणवत्ता वाले मांस की प्राप्ति होती है और इनका आहार कृषि कार्य में उत्पन्न बेकार पदार्थ और रसोई से निकले अपशिष्ट पदार्थ होते हैं । घुंगरू सूकर प्रायः काले रंग के और बुल डॉग की तरह विशेष चेहरे वाले होते हैं । इसके 6-12 से बच्चे होते हैं जिनका वजन जन्म के समय 1.0 kg तथा परिपक्व अवस्था में 7.0 – 10.0 kg होता है । नर तथा मादा दोनों ही शांत प्रवृत्ति के होते हैं और उन्हें संभालना आसान होता है । प्रजनन क्षेत्र में वे कूडे में से उपयोगी वस्तुएं ढूंढने की प्रणाली के तहत रखे जाते हैं तथा बरसाती फ़सल के रक्षक होते हैं ।

सफेद यॉर्कशायर

यह नस्ल भारत में सबसे अधिक पाई जाती है । इस नस्ल का रंग सफेद होता है । प्रजनन के मामले में, ये उन्नत नस्ल है । ये नस्ल एक बार में 6-7 शावकों को जन्म देती है । इस नस्ल के नर शूकरों का वजन 300-400 किलो और मादा शूकर का वजन 230-320 किलो तक होता है ।

लैंडरेस

इस नस्ल का रंग सफेद होता है । इसके कान और नाक लंबे होते हैं । प्रजनन के मामले में ये नस्ल भी अच्छी है । एक मादा सूकर एक बार में औसतन 4 से 6 बच्चों को जन्म देती है । इस नस्ल के नर शावकों का वजन 270 से 360 किलो तक होता है, जबकि मादा 200 से 320 किलो तक होती है ।

हैम्पशायर

इस नस्ल के शूकर मध्यम साइज के होते हैं । इनका शरीर गठा हुआ और रंग काला होता है । मांस के व्यवसाय के लिए ये नस्ल अच्छी होती है । इस नस्ल के मादा एक बार 5-6 बच्चों को जन्म देती है ।

दैनिक आहार की मात्रा:

- ग्रोअर सूकर (26 से 45 किलो तक): प्रतिदिन शरीर वजन का 4 प्रतिशत अथवा 5 से 2.0 किलो दाना मिश्रण।
- ग्रोअर सूकर (वजन 12 से 25 किलो तक): प्रतिदिन शरीर वजन का 6 प्रतिशत अथवा 1 से 5 किलो ग्राम दाना मिश्रण।
- फिनसर पिगः 5 किलो दाना मिश्रण।
- दुधारू सूकरी: 0 किलो और दूध पीने वाले प्रति बच्चे 200 ग्राम की दर से अतिरिक्त दाना मिश्रण। अधिकतम 5.0 किलो।
- दाना मिश्रण को सुबह और अपराहन में दो बराबर हिस्से में बाँट कर खिलायें। गर्भवती एवं दूध देती सूकरियों को भी फिनिशर राशन ही दिया जाता है ।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जैविक खेती का महत्व एवं तरल जैविक खादों की उपयोगिता

विवेक पाण्डेय[1], आदेश सिंह[2], संजीव सिंह[1], नीरज कुमार[1] एवं महावीर सिंह[3]

सस्य विज्ञान विभाग

सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ-250110 (उ.प्र.)

जैविक खेती

मनुष्य ने जब से कृषि कार्य करना प्रारंभ किया तभी से वह अपने चारों ओर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करता आया है। धीरे-धीरे वह सीखता गया और प्राप्त अनुभवों के आधार पर कृषि कार्यो में सुधार करता गया। कृषको ने बीज की बुवाई से लेकर खेत की जुताई, खाद, पानी आदि का उचित प्रबंधन करके अधिकतम फसलोत्पादन प्राप्त करने की कोशिश हमेशा जारी रखी। कृषकों ने एक ओर जहां बढ़ती आबादी की खाद्य मांग को पूरा करने एवं अपने आर्थिक विकास हेतु हर संभव प्रयास किए वही, अधिक उत्पादन हेतु रासायनिक उर्वरकों एवं दवाइयों का भी बेहताशा प्रयोग किया। जो कि आज भविष्य के लिए एक बड़े संकट की ओर संकेत करता है। वर्तमान में देश की बढ़ती जनसंख्या आज एक गंभीर समस्या है इस बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान माँग पूर्ति की होड़ में कृषक तरह-तरह की रसायनिक खादों एवं दवाइयों का लगातार प्रयोग कर रहे हैं, जिससे कि हमारा संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र भी प्रभावित हो रहा है। रसायनिक उर्वरकों के निरंतर अत्याधिक प्रयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में परिवर्तन आ रहा है, परिणाम स्वरूप भूमि की उर्वराशक्ति में भी गिरावट देखने को मिल रही है, जिसका मानव स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। आज किसानों के समक्ष यह एक चुनौती है कि, वही महंगी रासायनिक उर्वरकों एवं दवाइयों के दुष्प्रभाव से मिट्टी की उर्वरकता, पानी, वायु और अपने स्वास्थ्य को बचाए रखते हुए अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किस विधि का प्रयोग करें। इन बातों को ध्यान में रखते हुए आज किसान रासायनिक उत्पादों से बचाव के लिए अपनी पुरानी कृषि पद्धति की ओर मुंह मोड़ रहे हैं। इस प्राचीन पद्धति को हम जैविक खेती या कुदरती खेती के नाम से जानते हैं।

यह कृषि करने की एक ऐसी पद्धति है जिसमें संश्लेषित उर्वरकों एवं दवाइयों का अनुप्रयोग करते हुए अपने चारों तरफ उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग कर, प्रकृति एवं पर्यावरण को स्वच्छ व संतुलित बनाए रखते हुए मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। इसमें पूर्ण रूप से कार्बनिक खादों का प्रयोग किया जाता है। जिससे मृदा की संरचना, उसकी उर्वरता व जैविक विविधता में भी सुधार आता है। जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय फसलों में रोग व बीमारियों का प्रभाव भी कम होता है। वही दूसरी ओर, जैविक खेती भूमि और फसल की उपज को बनाए रखने, खेती की लागत को कम करने, संसाधनों की कमी और पर्यावरण प्रदूषण को कम करने और अंत में जरूरतमंद किसानों को नई तकनीक

प्रदान करने में एक प्रमुख भूमिका निभाती है । कृषि और प्रसंस्कृत खाद्य उत्पादन निर्यात विकास प्राधिकरण के अनुसार आज हमारे देश में कुल **4.27** मिलियन हेक्टेयर भूमि जैविक खेती के अंतर्गत पंजीकृत है । आज भी भारत में लगभग **70%** किसान छोटे एवं सीमांत जोत वाले हैं, जिनके पास **1** हेक्टेयर से कम कृषि जोत है ।

आजकल भारतीय कृषि में पशुपालन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है, जिससे प्रतिदिन लगभग पर्याप्त मात्रा में गोबर एवं मूत्र प्राप्त होता है, जिसका उपयोग कर मृदा की उर्वरता को टिकाऊ बनाकर कृषि उत्पादन में वृद्धि एवं उत्पादन लागत को कम किया जा सकता है । वर्तमान में कृषक फसलो की पोषक तत्वों की मांग को पूरा करने के लिए खेत में भारी मात्रा में जैविक खादे जैसे-गोबर की खाद, कंपोस्ट, केचुए की खाद एवं मुर्गी की खाद आदि पर निर्भर करते हैं । जिससे मौजूदा फसल में आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति कुछ मात्रा में ही होती है, और अवशेष पोषक तत्वों का प्रभाव पूर्ववर्ती फसल को प्राप्त होता है, इसलिए जरूरतमंद किसानों के लिए कम लागत के साथ टिकाऊ कृषि तकनीक की आवश्यकता है, ताकि मौजूदा फसलों की पोषक तत्वों की मांग को पूरा किया जा सके। जैविक कृषि में सफल फसल उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु विभिन्न जैविक खादों के प्रयोग विधियाँ अपनाई जाती हैं । जिसमें तरल कार्बनिक खाद एक ऐसी विधि है, जिसका मुख्य उद्देश्य मिट्टी के सूक्ष्मजीवों एवं वनस्पति को समृद्ध करना है । तरल जैविक खादे गोबर, गौ-मूत्र एवं कृषि उत्पादित कचरे से तैयार की जाती हैं, जिसका उपयोग फसलो पर छिड़काव करके, सिंचाई जल के साथ एवं मृदा में सीधे मिला कर फसलों की पोषक आवश्यकता को पूरा में किया जा सकता है ।

तरल जैविक खादे के प्रकार एवं बनाने की विधियाँ

जैव पदार्थों को गला सडाकर के तैयार की गयी ऐसी खाद जिसमें कि सूक्ष्मजीवों की संख्या व पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में उपस्थित हो जैविक खाद कहलाती है । कुछ तरल जैविक खादों के स्रोत, बनाने की विधि एवं प्रयोेग करने का तरीका निम्न प्रकार है ।

1. वर्मीवाश- वर्मीवाश केंचुओं व गोबर की सहायता से तैयार किया एक तरल जैव खाद हैं । केंचुए का शरीर तरल पदार्थों से भरा रहता है, एवं उसके शरीर से लगातार इस का उत्सर्जन होता रहता है । इस तरल पदार्थ का संग्रहण ही वर्मीवाश होता है । इसमें बहुत सारे पोषक तत्व जैसे- साइटोकाइनिन, आक्सीटोसिन, विटामिन्स, एमिनो एसिड, एंजाइम्स एवं उपयोगी सूक्ष्मजीव जैसे- बैक्टीरिया, कवक, एक्टीनोमाइसिटिस इत्यादि पाए जाते हैं । इसमें सभी पोषक तत्व घुलनशील रूप में उपस्थित होते हैं, जो पौधों को आसानी से उपलब्ध होते रहते हैं । इसका उपयोेग फसलों की वृद्धि व अधिक फसल उत्पादन हेतु करते हैं । वर्मीवाश में मौजूद सूक्ष्म जीवाणुओं, ह्मूमिक अम्ल व हार्मोन्स से भूमि का पी-एच- मान भी सामान्य बना रहता है ।

बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

- केंचुए - **5** किलोग्राम

- गोबर - 50 किलोग्राम
- जैव पदार्थ - 2 किलोग्राम
- ताजा पानी - 10 लीटर
- प्लास्टिक का एक ड्रम - 100 लीटर क्षमता

बनाने की विधि

इस विधि में एक छोटे ड्रम के उपर बड़े ड्रम को स्टैन्ड की सहायता से रख देते हंै। बड़े ड्रम की तली में एक निकास द्वार बना कर इस पर एक टाट-पट्टी रखकर गोबर व केंचुए डालकर पानी छिड़क देते हंै। इसके ऊपर पानी से भरी छिद्रयुक्त बाल्टी लटका दें। इससे धीरे-धीरे पानी टपकता रहता है और नीचे वाले ड्रम में वर्मीवाश इकट्ठा होता रहता है। वर्मीवाश में 10 गुना पानी मिलाकर फसलों पर छिड़काव करने से फसल की अच्छी बढ़वार होती है

2. पंचगव्य- पचगव्य एक विशेष प्रकार का किण्वित उत्पाद है जिसमें मुख्य रूप से गाय के पांच उत्पादो का प्रयोग किया जाता है। यह विभिन्न लाभकारी सूक्ष्मजीवों एवं पौधों के विकास को बढ़ावा देने में समृद्ध है। संस्कृत में पंचगव्य का अर्थ है गाय से प्राप्त पाँच उत्पादों (गोबर, मूत्र, दूध, घी और दही) के मिश्रण से है। पंचगव्य एक ऐसी तरल जैविक खाद है जिसका प्रयोग मिट्टी के सूक्ष्म जीवों की सुरक्षा एवं फसल के उत्पादन को बढ़ाने के लिए किया जाता है। इसका प्रयोग रासायनिक उर्वरकों की तुलना में सस्ता एवं अधिक लाभदायक पाया गया है। विभिन्न परीक्षणों द्वारा इसको जैविक खेती में प्रयोग हेतु मानकीकृत किया गया है

बनाने हेतु आवश्यक सामग्री

- ताजा गाय का गोबर - 10 किलोग्राम
- गोमूत्र - 10 लीटर
- गाय का दूध - 3 लीटर
- गाय के दूध का दही - 2 किलोग्राम
- गाय का घी - 1 किलोग्राम
- गुड - 1 किलोग्राम
- नारियल का पानी - 3 लीटर
- पके हुए केले - 1 दर्जन
- प्लास्टिक का बड़ा ड्रम - 100 लीटर पानी की क्षमता
- ढकने का कपड़ा

बनाने की विधि

इस विधि में गाय के गोबर एवं घी को एक मिट्टी के बर्तन में अच्छी तरह मिलाकर चार दिन के लिए छाया वाले स्थान में रख देते हैं। इस प्रकार प्रत्येक दिन में दो बार इसको अच्छी तरह से मिलाते हैं। एक बड़े बर्तन में 10 लीटर गोमूत्र, 3 लीटर गाय का दूध, 2 किलोग्राम दही, 3 लीटर नारियल के पानी, 1 दर्जन केले एवं 1 किलोग्राम गुड डालकर अच्छी तरह मिला देते हैं। पांचवें दिन दोनों मिश्रण को अच्छी तरह एक बर्तन में मिलाकर उनके मुंह को कपड़े से बाधकर ढक देते हैं, और प्रत्येक दिन इसको अच्छी तरह से मिलाकर कपड़े से ढक देते हैं। 15 दिन के बाद घोल को एक पतले कपड़े की सहायता से छान लेते हैं। इस प्रकार तैयार घोल में पर्याप्त मात्रा में पानी मिलाकर फसलों की पोषण आवश्यकता को पूरा करने हेतु छिड़काव किया जाता है।

3. वीजामृत- यह एक अत्यंत प्रभावशाली जैविक खाद है। जिसे गोबर, गोमूत्र, बरगद या पीपल के पेड़ के नीचे की मिट्टी, गुड़ और दाल के आटे को पानी के साथ मिलाकर तैयार किया जाता है। जीवामृत पौधों की वृद्धि एवं विकास के साथ-साथ मृदा संरचना की सुधार में मदद करता है। यह फसल की प्रतिरक्षा क्षमता को भी बढ़ाता है। जिससे फसल स्वस्थ बनी रहती है और अत्याधिक पैदावार देती है। फसलों में सिंचाई के साथ 200 लीटर जीवामृत को प्रति एकड़ की दर से प्रयोग किया जा सकता है, अथवा 10 से 20 लीटर तरल जीवामृत को 200 लीटर पानी में मिलाकर खड़ी फसल में छिड़काव किया जा सकता है।

तरल जीवामृत बनाने की सामग्री

- पानी - 200 लीटर
- ताजा गाय का गोबर - 10 लीटर
- दाल का आटा - 1 किलोग्राम
- गुड - 1 किलोग्राम
- बरगद या पीपल के पेड़ के नीचे की मिट्टी - 1 किलोग्राम
- प्लास्टिक का बड़ा ड्रम - 200 लीटर पानी की क्षमता
- ढकने का कपड़ा

बनाने की विधि

इस विधि में 10 किलोग्राम ताजा देसी गाय का गोबर, 10 लीटर पुराना गोमूत्र, 1 किलोग्राम दाल का आटा, 1 किलोग्राम बरगद या पीपल के पेड़ के नीचे की मिट्टी तथा 1 किलोग्राम गुड लेकर उसको 200 लीटर पानी की क्षमता वाले प्लास्टिक के ड्रम में अच्छी तरह मिलाते हैं। इसके बाद बर्तन के मुंह को कपड़े की सहायता से बांधकर ढक देते हैं एवं प्रत्येक दिन में 2 बार इसे घोल को हिलाया जाता है। इसको छाया वाले स्थान पर एक सप्ताह के लिए रख देते हैं। एक सप्ताह बाद इसको पतले कपड़े से छान लेते हैं। इस प्रकार तैयार जीवामृत को खेत में प्रयोग कर सकते हैं

4. बीजमृत- एक ऐसा लाभदायक जैविक तरल है, जिसका उपयोग फसलों के बीजोपचार में किया जाता है, यह एक फफूंदनाशी की तरह काम करता है। जिससे बीजों के अंकुरण एवं प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है। इस तरल जैव से उपचारित बीज में मृदा जनित रोगों का प्रकोप बहुत ही कम होता है।

बनाने हेतु आवश्यक सामग्री

- पानी - 20 लीटर
- ताजा गाय का गोबर - 10 किलोग्राम
- पुराना गोमूत्र - 10 लीटर
- बुझा चूना - 500 ग्राम
- पीपल के पेड़ के नीचे की मिट्टी - 1 किलोग्राम
- प्लास्टिक का बड़ा ड्रम
- ढकने का कपड़ा

बनाने की विधि

इस विधि में 100 किलोग्राम बीजोपचार के लिए एक बडें प्लास्टिक के ड्रम में 20 लीटर पानी लेकर उसमें 10 किलोग्राम गोबर एवं 10 लीटर गोमूत्र को डालकर अच्छी तरह मिलाते हैं। फिर 50 ग्राम बुझा चूना और 1 किलोग्राम मिट्टी को डालकर पुनः मिलाते हैं जिससे पूरा मिश्रण अच्छी तरह मिल जाए। अब बर्तन के मुंह को कपड़े से ढककर छाया वाले स्थान पर एक सप्ताह के लिए रखते हैं। दिन में दो बार इसको पुनः हिलाते हैं। इस प्रकार तैयार बीजामृत को 24 घंटे के अदंर 100 किलोग्राम बीज को अच्छी तरह मिलाकर बुबाई हेतु प्रयोग करते है या नर्सरी को जड़ों को इसमें डूबो कर उपचारित किया जा सकता हैं।

5- हरित पानी- यह सड़क के किनारे खड़े अनुपयोगी खरपतवारों से तैयार किया जाने वाला तरल खाद है जोकि मृदा की उर्वरा शाक्ति को बढाने के अलावा मृदा व पौधों को रोग व बीमारियों से बचाने का कार्य भी करता है। इस कारण पौधों की अच्छी बढ़वार होती है और फसल उत्पादन भी बढ़ता है।

बनाने हेतु आवश्यक सामग्री

- हरी अवस्था में खरपतवार - 25 किलोग्राम
- इमली - 500 ग्राम
- गुड - 500 ग्राम
- पिसा हुआ नमक - 250 ग्राम
- ताजा पानी - 60 लीटर
- प्लास्टिक का बड़ा ड्रम - 100 लीटर पानी की क्षमता

बनाने की विधि

उपरोक्त सामग्री को आपस में मिलाकर 10 से 15 दिन तक सड़ाते हंै, इसके पश्चात इस मिश्रण को कपड़े से छान लेते हैं इस प्रकार प्राप्त हुए घोल को हरित पानी कहते हंै।

उपयोग करने की विधि

इस प्रकार प्राप्त हरित पानी में उसका चार गुना पानी मिला कर प्रति एकड़ की दर से पहली सिंचाई के एक सप्ताह बाद फसलों पर छिड़काव करते हैं अथवा सिंचाई के पानी के साथ देते हैं। इससे पौधों व मृदा की रोगप्रतिरोधक क्षमता एवं मृदा उर्वरता में सुधार होता है। हरित-पानी से पौधों व मृदा के रोग एवं बीमारियों पर नियंत्रण होता है, जिससे फसलों की बढ़वार अच्छी होती है और फसल उत्पादन भी पड़ता है

तरल जैविक खादों के लाभ

तरल जैविक खाद में भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाती हैं।

तरल जैविक खाद्य मृदा में उपस्थित लाभदायक सूक्ष्म जीवों की संख्या एवं उनकी क्रियाशीलता में वृद्धि करती हैं।

फसल उत्पाद की गुणवत्ता एवं स्वाद में वृद्धि करती हैं।

तरल जैविक खाद्य मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखते हुए फसलों को आवश्यक पोषक तत्व घुलनशील अवस्था में प्रदान कराती हैं।

पशु अवशोषित कार्बनिक पदार्थों का उपयोग करके कम लागत में अधिक मात्रा में तरल जैविक खाद तैयार किया जा सकता है।

रासायनिक उर्वरकों के उपयोग पर निर्भरता कम कर के कृषकों की लागत में कमी लाते हैं।

तरल जैविक खाद्य पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती हैं।

तरल जैविक खाद हमारे पर्यावरण को दूषित एवं संक्रमित होने से बचाती हैं।

तरल जैविक खादों के महत्व

ठोस जैविक खादों की तुलना में तरल जैविक खादों में औसतन अधिक मात्रा में पोषक तत्व पाए जाते हैं। आधुनिक जैविक खेती में तरल जैविक खादे काफी हद तक जैविक खेती की रीढ़ बनी हुई है। तरल जैविक खादो का विवेकपूर्ण उपयोग किसी भी फसल के स्थायी उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण रणनीतियों में से एक है। तरल जैविक खादो का निरंतर उपयोग फसलो को आवश्यक पोषक तत्वो की उपलब्धता बनाए रखने में मदद करता है। चूंकि, सभी प्रकार के जैविक कचरे का उपयोग करके कम लागत पर इन्हें बड़ी मात्रा में उत्पादित किया जा सकता है, तरल खाद किसानों के लिए एक वरदान हो

सकती है, तरल जैविक पर्याप्त मात्रा में प्रमुख और साथ ही छोटे पौधे पोषक तत्व होते है साथ ही इनमें पौधों के लिए आवश्यक वृद्धि नियामक हार्मोन जैसे- पंचगव्य में इंडोल एसिटिक एसिड (IAA) और जिबरेलिक एसिड (GA) की पर्याप्त मात्रा होती है इसका 3% का स्प्रे चना की उच्च उपज एवं चावल के दाने की मिलिंग गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए आदर्श है। अतः इस प्रकार ये कृषक की उत्पादन लागत को कम करके आय को बढ़ाती है, साथ ही साथ तरल जैविक खादे पौधो द्वारा मृदा जड़ों की तुलना में पत्तियों से लगभग 20 गुना तेजी से अवशोषित की जाती है, परिणाम स्वरूप यह पौधो को शीध्रता से पोषक तत्व प्रदान करती है। अतः तरल जैविक खादे अस्थाई पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जैविक खेती में इनका उपयोग मुख्य रूप से उस मौसम के दौरान फसल की वृद्धि को प्रोत्साहित करने के लिए किया जाता है, जब पोषक तत्व का अवशोषण जड़ों के माध्यम से बाधित रहता है।

किसानों के लिए बैकयार्ड बकरी पालन : एक लाभकारी व्यवसाय

अभिनव सिंह[1], डॉ० आर० के० दोहरे[2], ऋषि कुमार सिंह[3] एवं यश कुमार सिंह[4]

[1-3]आचार्य नरेन्द्र देव कृषि विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

[4]यंग प्रोफेशनल - II, महायोगी गोरखनाथ कृषि विज्ञान केन्द्र

कोविड 19 और इसके अलग-अलग स्वरूप ने सम्पूर्ण विश्व मे महामारी का रूप ले लिया, जिससे देश की अर्थव्यवस्था को बहुत ही नुकसान हुआ है साथ ही देश में लाखों लोग बेरोजगार भी हो गए है । इस महामारी में बैकयार्ड बकरी पालन बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुआ है क्योकि कम पूँजी लगाकर इस व्यवसाय को प्रारम्भ किया जा सकता है। इस व्यवसाय को करने के लिए व्यक्तिगत, स्वयं सहायता समूह आदि के मध्यम से भी किया जा सकता है। भारत में अधिकांशतः लोगों की आजीविका कृषि एवं पशुपालन पर निर्भर रहती है। भारत में बकरी पालन की प्रथा सदियों पुरानी है, 'महात्मा गाँधी' जी ने बकरी को गरीब की गाय कहा है और बकरी पालन को हमेशा ही आजीविका का सुरक्षित श्रोत माना है। बीते समय में, ग्रामीणों का मुख्य रोजगार पशु पालन होने के कारण वे इसी पर आश्रित रहते थे। लेकिन देश के विभिन्न भागों में, चारागाह भूमि और हरे चारे की कमी की वजह से पशु पालन, विशेष रुप से बकरी पालन, छोटे एवं घरेलू स्तर के पालकों के लिए कठिन हो गया है। चारागाह की कमी होने के कारण से मजदूर वर्ग के पास इतनी जमीन खेती योग्य नही है कि वह बड़े स्तर कि खेती कर सकें इस लिए उनको कम जगह मे रह कर भी बैकयार्ड बकरी पालन कर सकते है । इससे भूमिहीन मजदूरों और छोटे किसानों को भी लाभ मिला है। किसी भी स्थानीय नस्ल के मेमनों (दोनों नर व मादा) को इस पद्धति के माध्यम से चयन करके पाला जा सकता है। समूह के सदस्यों के अनुसार यह विधि उन किसानों के लिए उपयुक्त है जिनके पास पशुओं के चरने लिए पर्याप्त भूमि नहीं है। यह किसानों को कम समय में अधिक संख्या में बकरी पालन करने में मदद करती है। बकरियों की मांग भारत में बहुत बढ़ गयी है, बकरी भारत में मांस का मुख्य स्रोत हैं। इसका मांस बहुत पसंद किया जाता है तथा इसकी घरेलू मांग बहुत अधिक है। बकरियों से अच्छी गुणवत्ता का खाद भी प्राप्त होती है, आर्थिक दृष्टी से बहुत ही अच्छा व्यवसाय है जिसको कम पूँजी मे भी किया जा सकता है। बकरी तथा श्रेष्ठ आर्थिक लाभ वाले उत्पादों की उच्च मांग के कारण अनेक प्रगतिशील किसान और शिक्षित युवा व्यावसायिक पैमाने पर बकरी पालन उद्योग को अपनाने की दिशा में प्रेरित हुए हैं।

उत्पादन की अधिक लागत तथा बकरियों में अधिक मृत्यु दर का होना प्रमुख समस्याएँ हैं। उन्नत नस्ल या संकर नस्ल की बकरियों के बच्चे मिलना आदि समस्याएँ भी बकरी पालन मे बाधा पहुँचाती हैं। बकरी पालन की समस्या से निपटने के लिए किसानों को कृषि विज्ञान केन्द्रों पर प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षण लेना चाहिए। कृषि विज्ञान केन्द्रों का दौरा करने से किसानों को विभिन्न उन्नत जानकारियाँ जैसे बकरियों के पेट में पलने वाले कृमियों को नष्ट करने, टीकाकरण, आहार प्रबंधन, विटामिनों तथा खनिजों को आहार में मिलाए जाने आदि प्राप्त होती हैं। समय-समय पर पशुओं को कृमिहीन किए जाने, टीकाकरण व नियमित जांच से पशुओं की मृत्यु दर कम हो जाती है और इस प्रकार उनकी वृद्धि तथा कायाभार में भी पर्याप्त सुधार होता है। बैकयार्ड बकरी पालन हेतु बकरियों की विभिन्न नस्लें निम्नप्रकार हैं -

बरबरीः बरबरी मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश के आगरा, मथुरा एवं इससे लगे क्षेत्रों में काफी संख्या में उपलब्ध है । यह छोटे कद की होती है परन्तु इसका शरीर काफी गठीला होता है । शरीर पर छोटे-छोटे बाल पाये जाते हैं एवं शरीर पर सफेद के साथ भूरा या काला धब्बा पाया जाता है । यह देखने में हिरण के जैसी लगती है, कान बहुत ही छोटे होते है । थन अच्छे विकसित होते हैं । वयस्क नर का औसत वजन 35-40 किलो ग्राम तथा मादा का वजन 25-30 किलो ग्राम होता है । यह

घर में बांध कर गाय की तरह भी रखी जा सकती है । इसकी प्रजनन क्षमता भी काफी अधिक है, दो वर्ष में तीन बार बच्चों को जन्म देती है तथा एक ब्यांत में औसतन 1-2 बच्चों को जन्म देती है । इसका बच्चा करीब 8-10 माह की उम्र में वयस्क होता है । इस नस्ल की बकरियाँ मांस तथा दूध उत्पादन हेतु उपयुक्त है, बकरियाँ औसतन 1.0 किलो ग्राम दूध प्रतिदिन देती है ।

जमुनापारीः जमुनापारी भारत में पायी जाने वाली अन्य नस्लों की तुलना में सबसे उँची तथा लम्बी होती है । यह उत्तर प्रदेश के इटावा जिला एवं गंगा, यमुना तथा चम्बल नदियों से घिरे क्षेत्र में पायी जाती है । एंग्लोनुवियन बकरियों के विकास में जमुनापारी नस्ल का विशेष योगदान रहा है । इसकी नाक काफी उभरी रहती है, जिसे 'रोमन' नाक कहते हैं । सींग छोटा एवं चौड़ा होता है एवं कान 10-12 इंच लम्बा चौड़ा मुड़ा हुआ तथा लटकता रहता है । इसके जाँघ में पीछे की ओर काफी लम्बे घने बाल रहते हैं तथा इसके शरीर पर सफेद एवं लाल रंग के लम्बे बाल पाये जाते हैं । इसका शरीर बेलनाकार

होता है । वयस्क नर का औसत वजन 70-90 किलो ग्राम तथा मादा का वजन 50-60 किलो ग्राम होता है । इसके बच्चों का जन्म समय औसत वजन 2.5-3.0 किलो ग्राम होता है । इस नस्ल की बकरियाँ अपने गृह क्षेत्र में औसतन 1.5 से 2.0 किलो ग्राम दूध प्रतिदिन देती है । इस नस्ल की बकरियाँ दूध तथा मांस उत्पादन हेतु उपयुक्त है । बकरियाँ सलाना बच्चों को जन्म देती है तथा एक बार में करीब 90 प्रतिशत एक ही बच्चा उत्पन्न करती है । इस जाति की बकरियाँ मुख्य रूप से झाड़ियाँ एवं वृक्ष के पत्तों पर निर्भर रहती है ।

ब्लैक बंगालः इस जाति की बकरियाँ पश्चिम बंगाल, झारखंड, असम, उत्तरी उड़ीसा एवं बंगाल में पायी जाती है । इसके शरीर पर काला, भूरा तथा सफेद रंग का छोटा रोंआ पाया जाता है । अधिकांश (करीब 80 प्रतिशत) बकरियों में काला रोंआ होता है एवं यह छोटे कद की होती है । वयस्क नर का वजन करीब 18-20 किलो ग्राम होता है, जबकि मादा का वजन 15-18 किलो ग्राम होता है । इसका शरीर गठीला होने के साथ-साथ आगे से पीछे की ओर ज्यादा चौड़ा तथा बीच में अधिक मोटा होता है । इसका कान छोटा, खड़ा एवं आगे की ओर निकला रहता है । इस नस्ल की प्रजनन क्षमता काफी

अच्छी है, औसतन यह 2 वर्ष में 3 बार बच्चा देती है एवं एक ब्यांत में 2-3 बच्चों को जन्म देती है । कुछ बकरियाँ एक वर्ष में दो बार बच्चे पैदा करती है तथा एक बार में 4-4 बच्चे देती है । इस नस्ल की मेमना 8-10 माह की उम्र

में वयस्कता प्राप्त कर लेती है तथा औसतन 15-16 माह की उम्र में प्रथम बार बच्चे पैदा करती है। इस जाति के नर बच्चा का मांस काफी स्वादिष्ट होता है तथा खाल भी उत्तम कोटि का होता है। इन्हीं कारणों से ब्लैक बंगाल नस्ल की बकरियाँ मांस उत्पादन हेतु बहुत उपयोगी है।

बीटलः बीटल नस्ल की बकरियाँ मुख्य रूप से पंजाब प्रांत के गुरदासपुर जिला के बटाला अनुमंडल में पाया जाता है। पंजाब से लगे पाकिस्तान के क्षेत्रों में भी इस नस्ल की बकरियाँ उपलब्ध है। इसका शरीर भूरे रंग पर सफेद-सफेद धब्बा या काले रंग पर सफेद-सफेद धब्बा लिये होता है। यह देखने में जमुनापारी बकरियाँ जैसी लगती है परन्तु ऊँचाई एवं वजन की तुलना में जमुनापारी से छोटी होती है। इसका कान लम्बा, चौड़ा तथा लटकता हुआ होता है। इसकी नाक उभरी रहती है तथा कान की लम्बाई एवं नाक का उभरापन जमुनापारी की तुलना में कम होता है। सींग बाहर एवं पीछे की ओर घुमा रहता है। वयस्क नर का वजन 55-65 किलो ग्राम तथा मादा का वजन 45-55 किलो ग्राम होता है। इसके बच्चों का जन्म के समय वजन 2.5-3.0 किलो ग्राम होता है। इसका शरीर गठीला होता है तथा जाँघ के पिछले भाग में कम घना बाल रहता है। इस नस्ल की बकरियाँ औसतन 1.25-2.0 किलो ग्राम दूध प्रतिदिन देती है। इस नस्ल की बकरियाँ सलाना बच्चे पैदा करती है एवं एक बार में करीब 60% बकरियाँ एक ही बच्चा देती है। बीटल नस्ल के बकरों का प्रयोग अन्य छोटे तथा मध्यम आकार के बकरियों के नस्ल सुधार हेतु किया जाता है। बीटल प्रायः सभी जलवायु हेतु उपयुक्त पाया गया है।

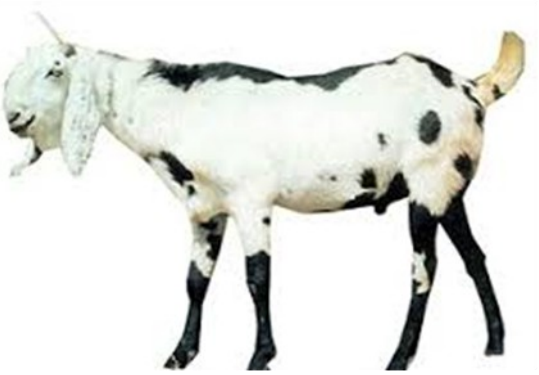

सिरोहीः सिरोही नस्ल की बकरियाँ मुख्य रूप से राजस्थान के सिरोही जिला में पायी जाती है। यह गुजरात एवं राजस्थान के सीमावर्ती क्षेत्रों में भी उपलब्ध है। इस नस्ल की बकरियाँ दूध उत्पादन हेतु पाली जाती है लेकिन मांस उत्पादन के लिए भी यह उपयुक्त है। इसका शरीर गठीला एवं रंग सफेद, भूरा या सफेद एवं भूरा का मिश्रण लिये होता है। इसका नाक छोटा परन्तु उभरा रहता है एवं कान लम्बा होता है। पूंछ मुड़ा हुआ एवं पूंछ का बाल मोटा तथा खड़ा होता है। इसके शरीर का बाल मोटा एवं छोटा होता है। यह सलाना एक ब्यांत में औसतन 1-2 बच्चे देती है। इस नस्ल की बकरियों को बिना चराये भी पाला जा सकता है।

बकरी पालन का महत्व सूखे या चारे की कमी वाले तथा पहाड़ी क्षेत्रों में और भी बढ़ जाता है, क्योंकि बकरियों को आस पास के क्षेत्र तथा जंगल में चराकर भी पाला जा सकता है। बकरी पालन रोजगार का बेहतर साधन है इससे सूखाग्रस्त तथा पहाड़ी क्षेत्रों के लोगों का पलायन रुकेगा। बकरी पालन महिलाओं के लिए तो वरदान साबित हो सकता है क्योंकि इससे न सिर्फ महिलायें आत्मनिर्भर बनेंगी बल्कि उनको इससे रोजगार भी मिलेगा।